वचनामृतसंकलन

श्रीमन्महाप्रभुश्रीवल्लभवचनामृत : १

श्रीमत्प्रभुचरणगोस्वामिश्रीविट्ठलनाथवचनामृत : २

श्रीवल्लभवचनामृत (श्रीगोकुलनाथजीके) : ३

गोस्वामी श्याममनोहर

प्रकाशक :
गोस्वामी श्याममनोहर.
६३, स्वस्तिक सोसायटी
४था रस्ता, जुहुस्कीम
विले-पार्ला, मुंबई.४०००५६

प्रकाशनार्थ आर्थिकसहयोग :
(1)M/s. chandak Realtors pvt. Ltd., 202-B, Breezy Corner, Mahavir Nagar, Kandivli (w), Mumbai 400067.
(२)श्री मनीष कि. बाराई, ५ विवेक कमल, प्लाट २१४/ए, ईर्ला ब्रिज, अंधेरी प. ४०००५८.
(३)

संकलनकार : गोस्वामी श्याममनोहर

प्रथमसंस्करण :
श्रावणशुक्लपक्ष पवित्राएकादशी वि.सं.२०६८

निःशुल्कवितरणार्थ
प्रति : ३०००

मुद्रक :
रमा आर्ट्स्,
४, चुनावाला इन्डस्ट्रिअल् एस्टेट्,
कोंडिविटा, अंधेरी (पूर्व),
मुंबई : ४०० ०५९.

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

भूमिका

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां।
हस्तौ च कर्मसु मनस् तव पादयोर् नः ॥
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत् प्रणामे।
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥

हमारी वाणी आपके बारेमें जो सुने वाको गुणगान करती रहे, हमारे कर्ण आपकी कथा सुनतें रहे।

आपके संबंधित कर्ममें हमारे दोनों हाथ भी लगें रहें, हमारो मन आपकी चरणोंकी स्मृतिमें लग्यो रहें॥

हमारो शिर आपको प्रणाम करवेके लिये अवनत रहे।

हमारी दृष्टि, खुदआपके आत्माके रूप धारण करवेके कारण, भगवान्के तनुरूपी सत्पुरुषनके दर्शनको लाभ लेती रहे॥

या बखत एक ग्रंथ जो प्रकाशित करनो चाह रह्यो हूँ वो वचनामृत हैं और अपने यहाँ वचनामृतन्की बड़ी प्राचीन परंपरा रही है. अखबारनूमें आपने पढ़्यो होयगो के जैसे सम्पादकीयके ऊपर एक अमरसूक्ति आवे है. स्कूलनूमें भी जैसे आजको सुविचार लिख्यो जाय है, वा ढंगसु अपने यहाँ भी ऐसी प्राचीन परंपरा रही है के बड़ेनूकी वाणी जो सूत्रात्मक है वाकु एक तरहसु संकलित करके वचनामृतके रूपमें प्रस्तुत करने. वैसे जो भी

बोले वो वचनामृत है पर ग्रंथकी एक विशेषता ये है के ग्रंथ जब भी लिखे जाय एक सूत्रकु पकड़के लिखे जाय जा विचारकु या उपदिष्ट सूत्रकु पूरे ग्रंथमें एकदम कठोरतासु पकड़के चले जो भी वाके पहलू हैं धीरे-धीरे उनको खुलासा कियो जाय.

वचनामृतकी ये विशेषता रही है वामें कोई ऐसे एक विचारके सूत्र नहीं होंवे क्योंके वचनामृत कोई ग्रंथके रूपसु नहीं कहे-लिखे गये हैं. उन-उन प्रसंगनूमें जो बड़ेनूने बात कही है उनकु संकलित कियो गयो है या तरीकेके वचनामृत बौद्धमतमें भी बहोत हैं अपने यहाँ उपनिषद्में हैं. जैनन्के यहां भी हैं और भी संप्रदायनूमें या प्रकारके वचनामृत अथवा ग्रंथ हैं. अपने संप्रदायमें भी वचनामृतन्को प्रारंभसु ही बड़ो उपयोग रह्यो पर सबसु पहले वचनामृत अपने संप्रदायमें श्रीगोकुलनाथजीके हैं - जो चौबीस वचनामृत श्रीगोकुलनाथजीके कहे जाय हैं वाके बाद अभी तक भी या तरीकेके वचनामृतन्के संकलन होते रहें हैं.

उन वचनामृतन्के संकलनमें कोई एक बातकु पकड़के नहीं समझायो जाय है पर जा बखत जा प्रसंगमें जो बात बड़ेनूने कहीं वाकु इकट्ठी कर-करकें ये वचनामृत बनाये गये. महर्षि अरविन्दोके बहोत सुंदर वचनामृत या ढंगसु मिले हैं. मोकु ऐसी इच्छा भई के महाप्रभुजी गुसांईजी के वचनामृत भी अपनूकु संकलित करने चहियें पर आज अपने पास ऐसी स्थिति तो नहीं है के वो सारो रॅकोर्ड अपन् लावें. मैंने ये वचनामृत महाप्रभुजीकी चौरासी वैष्णवन्की वार्ता, गुसांईजीकी दो सो बावन वैष्णवन्की वार्ता, गृहवार्ता, बैठक वार्तान् सु संकलित किये हैं ऐसी हृदयमें इच्छा है के या साल या ग्रंथको प्रकाशन करनो.

या वचनामृतनूके संकलनमें मैंने या बातको ध्यान दियो है के जैसे वार्तानूमेंसु वचनामृत संकलित किये हैं तो कई बखत क्या होवे के वार्तानूके संदर्भमें तो वो वचन बड़े सार्थक लग रहे हैं पर खाली वाकु छांटके देखो तो वाको वो स्वरूप नहीं उभरे है जैसो वचनामृतको स्वरूप उभरनो चहिये.

अब क्योंके वार्तानूमेंसु संकलित भये हैं. तो एक वाकी विवशता हो रही है के उन वार्तानूकु उतनीसी लेनी जितनेके कारण वा वचनामृतको संदर्भ ख्यालमें आ जाय. बाकी वार्ताएं चौरासी दौ सो बावन वैष्णवनूकी निजवार्ता घरूवार्ता वो तो प्रत्येक दो-तीन वर्षके अंतरायसु प्रकाशित होती रहीं हैं. उन वार्तानूको पुन प्रकाशन करवेको यहाँ हेतु नहीं है, न उन वार्तानूकु संक्षिप्त करवेको यहाँ हेतु है. इन सब बातनूमें मैं बहोत नहीं मानूँ हूँ. जब वचनामृत संकलित करनो है तो सचमुचमें ये एक लाचारी सी हो जाय है के वो वार्ता अपनू नहीं देखें तो वो वचनामृतको स्वरूप नहीं खुले है. याके कारण जितनो प्रसंग वा वचनामृतकी भूमिकाके रूपमें अपेक्षित है उतनी मैंने वार्ता भी ली है. और प्रयास ऐसो कियो है. एक उनमेंसु वचनामृत अलग छांटवेके लिये वार्ताकु टेक्स्ट् टाइपूमें और जो वचनामृत है वाकु बोल्ड् टाइपूमें छापने जासु अलगसु वापे ध्यान जावे ऐसो प्रयास कियो है. ऐसे ४४ वचनामृत महाप्रभुजीके मिले हैं जो अलग-अलग प्रसंगमें महाप्रभुजीने किये हैं.

वैसे षोडशग्रंथ भी अपनू देखें तो वो भी छोटे-मोटे वचनामृत जैसे ही हैं पर उन सब ग्रंथनूकी खासियत ये है के उन सबकु एक साथ सजाके रखवेसु उनमें एक क्रमबद्धता आ रही है यासु वो एक ग्रंथको रूप ले जाय हैं. आज अपनू ग्रंथको

एक अर्थ ये समझें हैं के कोई किताब या कोई पुस्तक, कोई आदर्श बात कही जाती होय तो ग्रंथ है जैसे सरदारनूमें गुरुग्रंथसाहिब. ग्रंथको एक अलग स्वभाव है और वो स्वभाव है विषयको जो ग्रथन करे विषयकु जो बांधे. 'ग्रथन' यानि बांधनो. तो विषयकु जो बांधे वाको नाम 'ग्रंथ' कह्यो जाय है. पुराने जमानामें ग्रंथ भी बांधे जाते हते. आजकी जैसी ऐसे खुलवेवाली पुस्तकें नहीं हतीं. अलग-अलग छुट्टे पत्ता होते हते और उनकु बांध्यो जातो हतो. वा अर्थमें भी याकु 'ग्रंथ' कह्यो जाय है. पत्तानूकु बांधनो यह एक छोटीमोटी बात है पर विषयकु बाधनों ये खास महत्त्वकी बात है.

अभी हालमें ही हमारे यहाँ एक परिचित आये हते वो मेरे संग्रहमेंसु कोई किताब उठा रहे हते. बड़ी वजनदार किताब हती. मेरे मुँहसु यों निकल गयो के सावधानीसु उतारियो वो किताब माथेपे नहीं पड़ जाय. तो उनने कहीं के सिरपे पड़ गयी तो तो उद्धार हो जायगो. मैंने कहीके सिरपे पड़ी तो उद्धार नहीं सिर ही फूटेगो हाँ! सिरमें पड़े तो उद्धार हो सके है. थोड़ो सो अंतर है, सिरपे पड़नो और सिरमें पड़नो. तो आवश्यकता सिरपे पड़वेकी नहीं है. न भी पड़े तो काम चलेगो पर सिरमें पड़वेकी आवश्यकता है याही तरहसु आवश्यकता ग्रंथके पन्नानूकु बांधवेकी नहीं है, विषयकु बांधवेकी है. तो जब विषय बंध रह्यो है तो वो ग्रंथ है और विषय नहीं बंध पायो तो वो वचनामृत है.

षोडशग्रंथ क्या है? वैसे सोलह विषय हैं. और हर ग्रंथ अपने आपमें एक छुट्टो विषय है पर उनकु जा बखत सजाकें रख दे हैं तो एक पूरो विषय, जो महाप्रभुजी अपनू पुष्टिमार्गीयनूकु

केहनो चाहें हैं, वो बंधके वहाँ आ रह्यो है वाके लिये वो षोडशग्रंथ है. षोडश वचनामृत नहीं है और वचनामृत प्राय ऐसे होते हते के जामें कोई विषय बंधतो नहीं होय छोटी-छोटी सूक्ति होती हती. तो मूलमें अपनूकु ये ग्रंथ और वचनामृत को जो स्वरूप है वो ख्यालमें रखकें वाकी मजा लेनी है तो यहाँ बंधके कोई विषय नहीं आयेगो. कभी कोई बात आ रही है कभी कोई और बात आ रही है जो बात आ रही है वा बातकी मजा लेनी है.

इन तीन वचनामृतमें प्रथम दो अर्थात् महाप्रभु तथा प्रभुचरण के ८४ और २५२ वैष्णवनूकी वार्तानूमेंसू संकलित हैं. तीसरे चतुर्थात्मज श्रीगोकुलनाथजीके वचनामृत कोई कथाप्रसंगके अंगतया उपदिष्ट नहीं हैं.

ये तो स्वयंकृत कर्तव्योपदेशनूको संकलन है. यासू ही शैली और कथ्य ही नहीं कथनभारमें भी कहीं-कहीं प्रभेद झलके है.

उदाहरणतया पुष्टिमार्गानुगामीनूके सुजाति समर्पणी और मर्यादी ऐसे तीन प्रभेद ८४ / २५२ वार्तानूमें उपलब्ध नहीं होवें है, अकिंचन सम्पन्न और तादृशी ऐसे प्रभेदनूके सिवा.

फिरभी संप्रदायको स्वरूप बहती नदीनूके जैसो होवें हैं. उनमें कभी मूलधाराके सामने कोई पर्वत-द्वीप अवरोध बनके आवे तब दो धारा बंटके क्षीण हो जाती होवें. कभी दूसरी नदीनूकी धारानूके मिल जावेसू मूलधारासू भी अधिक गहराई या विस्तृत पटनूमें बहवें लग जाती होवें हैं.

चतुर्थात्मज श्रीगोकुलेशके वचनामृत याकी गवाही दे रहें हैं. कुछ उपदेश विधानात्मक / निषेधात्मक ऐसे जो महाप्रभु - प्रभुचरणके ग्रन्थनूमें उपदिष्ट नहीं भये है, यहां उपदिष्ट भये है ये मार्गकी मर्यादाके संरक्षणार्थ ही संयोजित भये है. कुछ अकठोर जो सहजता हती उनकू यहां कठोरतया अनुसरणीय दिखलायी गयी है, या भिन्नाधिकारक होये ऐसी तरहसे गौण बनायी गयी है. सर्वथा, निसंदेहतया, जो बात कह - समझ लेनी आवश्यक है वो ये कि चतुर्थात्मज श्रीगोकुलेश पुष्टिमार्गमें कोई तरहको बिखराव, पाषंड - दंभ, आत्मवंचना पुष्टिभक्ति या शरणागतिके नामपे या वाके बहानासू दीमककी तरह घुस न जाये अथवा पुष्टिसंप्रदायके भवनकु, जैसे वर्तमानमें खोखलो बना दियो गयो हैं, ऐसे न कहीं बना दे वाकी सावधानी रखनो चाह रहें है.

ये कथा अन्य है कि वर्तमानमें अपन् पुष्टिमार्गीयन्ने महाप्रभु - प्रभुचरणके उपदेशकु भी अपने जघन्यकोटिके स्वार्थकी पूर्तिके हेतु दुरुपयोग करवेमें कोई संकोच नहीं बर्त्यो! तब तो चतुर्थात्मजके उपदिष्ट वचनामृतको भी स्वार्थपूर्ण दुरुपयोग क्यों नहीं कियो जा सके! प्रभुचरणके वचनामृतमें ''**नानृतात् पातकं परम्**'' आदेश मिले है. चतुर्थात्मज श्रीगोकुलेशके वचनामृतमें भी ''**अपनी सामर्थ्य देखके नेग बांधे**'' उपदेशकी तरह ''**सो थोरे ही भगवद्धर्मसों वाके कार्य सिद्ध हो जावें और बहोत करे और पाखंडसहित होय तो भगवद्धर्म न बढ़े**'' कहां नहीं मिले? चतुर्थात्मजकी पुष्टिभाववर्धनकी सूक्ष्मेक्षिका ''**एतन्मार्गके ग्रन्थकी टीकानूको श्रवण करे बिना प्रभुमें मन नाहीं लागे**'' उपदेश देवेकु उत्साहित करे है परन्तु ग्रन्थोपदिष्ट सेवाप्रणाली दीक्षाप्रणाली कथाप्रणाली अपन् आधुनिकनूकी लाभ - पूजा बढ़ावे, कृष्णभक्तिभावना करवेमें आड़े आवे है. सो देढसो - दोसो वर्षनूसु प्रचलित विकृत परंपराके पक्षधर होनो अपन् अधिक पसंद करें

हैं. अत: पिता पुत्र और पौत्र के ग्रन्थगत उपदेश आज अपने लिये हृदयशूल बन गये है!

अपनी अनृतनिष्ठाकी पराकाष्ठा तो ये है के स्वयं यदा - कदा असमंजस बनके खुद अपन्ने जो स्वीकार्यो होय, जिनकुं 'अमृतवचनावली'में संकलिततया पढ़्यो जा सके है, उनकुं भी देश - काल - अवसरके अन्तर बताके अपनी निर्लज्जता भी ढंकनो नहीं चाहें हैं.

इन वचनामृतनकु कम्प्युटर्में फिड् करवेमें चि.सौ.बिन्दुबहुजी, श्रीमती - श्री मनीषा परेश शाह को सहयोग सर्वथा अविस्मरणीय है.

श्रावनशुक्लपक्ष पवित्राएकादशी
वि.सं.२०६८

गोस्वामी श्याममनोहर

विषयानुक्रमणिका

वचनामृत क्र.	वार्ता क्र.	नाम	पृष्ट
श्रीमन्महाप्रभुश्रीवल्लभवचनामृत			
१-२.	१.	दामोदरदासजी...	१
३-४.	२.	कृष्णदास मेघन...	२
५-६.	३.	दामोदरदास संभरवाले...	५
७-८.	४.	पद्मनाभदास...	७
९.	५.	रजो...	९
१०.	६.	सेठ पुरुषोत्तमदास...	११
११.	७.	रामदास सारस्वत...	१२
१२.	८.	गदाधरदास कपिल...	१३
१३.	११.	गोविंददास भल्ला...	१४
१४.	१४.	नारायणदास ब्रह्मचारी...	१४
१५.	१५.	एक क्षत्राणि महावनकी...	१६
१६.	१८.	दिनकरदास सेठकी...	१७
१७.	१९.	दिनकरदास मुकुंददासकी...	१८
१८-२०.	२०.	प्रभुदास जलोटा...	१८
२१.	२४.	पूरणमल क्षत्री...	२२
२२.	२८.	गोपालदास बांसवाडे...	२६
२३.	३०.	पुरुषोत्तमदास जोसी...	२६
२४.	३१.	जगन्नाथ जोसी...	२८
२५.	३२.	राणा व्यास...	२९
२६.	३४.	गोविंद दुबे...	३०
२७.	३५.	राजा दुबे...	३१
२८.	३८.	वासुदेवदास छकडा...	३४
२९.	३.	घरुवार्ता...	३६
३०.	३९.	बाबाबेनू...	३७
३१.	४०.	जगतानन्द पंडित...	३९
३२.	४१.	आनंददास विश्वंभरदास...	४०
३३.	४२.	एक ब्राह्मणी अडेलकी...	४१
३४.	४९.	रामानन्द पंडित...	४२
३५.	५२.	भगवानदास सारस्वत...	४५
३६.	५३.	भगवानदास सांचोरा...	४५
३७.	१६.	निजवार्ता...	४७
३८.	५६.	अच्युतदास सारस्वत...	४८
३९.	५८.	नारायणदास भाट...	४९
४०.	५९.	नारायणदास लुहाणा...	४९
४१.	६२.	एक क्षत्री सिंहनंदके...	५०
४२.	६४.	एक क्षत्री पूर्वको अन्यमार्गी...	५१
४३.	६५.	लघु पुरुषोत्तमदास...	५१
४४.	६६.	कविराज भाट...	५२
४५.	७०.	कनैयाशाल...	५२
४६.	७२.	नरहरदास संन्यासी...	५३
४७-४८.	७९.	गोपालदास क्षत्री...	५४
४९.	८२.	परमानन्ददास...	५५
श्रीमत्प्रभुचरणगोस्वामिश्रीविट्ठलनाथवचनामृत			
१.	१.	नागजी भट्ट...	५७
२-३.	२.	कृष्ण भट्ट...	५८
४-५.	३.	चाचा हरिवंशजी...	५९
६.	६.	विट्ठलदास...	६०
७.	२३.	एक विरक्त परिक्रमावालो...	६०
८.	२५.	जनार्दनदास गोपालदास...	६१
९.	४२.	एक वैष्णव गौरवा क्षत्री...	६१
१०.	४४.	स्यामदास आंजणा कुणबी...	६१
११.	४९.	पुरुषोत्तमदास पुष्करणा ब्राह्मण..	६२

१२.	५१.	ध्यानदास जगन्नाथदास...	६२
१३.	५३.	एक राजपूत गरासिया...	६३
१४.	५४.	एक पटेल कुणबी...	६३
१५.	७०.	हतित पतित राक्षस...	६४
१६.	७१.	दोउ वैष्णव विरक्त...	६४
१७.	७५.	बिरबलकी बेटी...	६५
१८.	८०.	दोउ कणबी...	६५
१९.	८८.	एक क्षत्री आत्मनिवेदनवालो...	६६
२०.	९४.	परमानन्द सोनी...	६६
२१.	९९.	एक ब्राह्मन पंडित...	६७
२२.	१२६.	एक वैष्णव...	६८
२३.	१३४.	एक विरक्त गोकुलको...	६८
२४.	१४१.	देवजीभाइ पोरबंदरके...	६९
२५.	१४२.	एक डोकरी...	६९
२६.	१४७.	एक पठानको बेटा...	६९
२७.	१६१.	एक वैष्णव जो गिरिराज पर चढ्यो...	७०
२८.	१६२.	एक विरक्त ब्राह्मन गुजरातको...	७०
२९-३०.	१६६.	रूपा पोरिया...	७५
३१.	१७७.	राजा मानसिंग...	७५
३२-३३.	२०९.	किसोरीबाइ...	७५
३४.	२१८	एक ब्राह्मन खंभाइचको...	७६
३५.	२१९.	एक क्षत्री वैष्णव...	७७
३६.	२२३.	सेठकी बेटी विरक्त...	७७
३७.	२२५.	स्त्री पुरुष...	७७
३८.	२४१.	नंददासजी...	७७
३९.	२४७.	गोविंदस्वामी...	७८
४०.	२५१.	माधवदास दलाल...	७८

४१.	८२.	कुंभनदास(८४-वैष्णववार्ता)...	७९

श्रीवल्लभवचनामृत (श्रीगोकुलनाथजीके)

१.	१.	वचनामृत २४...	८१
२.	२.	वचनामृत २४...	८४
३.	३.	वचनामृत २४...	८५
४.	४.	वचनामृत २४...	८६
५.	५.	वचनामृत २४...	८८
६.	६.	वचनामृत २४...	८९
७.	७.	वचनामृत २४...	९०
८.	८.	वचनामृत २४...	९१
९.	९.	वचनामृत २४...	९१
१०.	१०.	वचनामृत २४...	९२
११.	११.	वचनामृत २४...	९४
१२.	१२.	वचनामृत २४...	९५
१३.	१३.	वचनामृत २४...	९७
१४.	१४.	वचनामृत २४...	९९
१५.	१५.	वचनामृत २४...	१००
१६.	१६.	वचनामृत २४...	१०३
१७.	१७.	वचनामृत २४...	१०५
१८.	१८.	वचनामृत २४...	१०७
१९.	१९.	वचनामृत २४...	१०८
२०.	२०.	वचनामृत २४...	१०९
२१.	२१.	वचनामृत २४...	११२
२२.	२२.	वचनामृत २४...	११४
२३.	२३.	वचनामृत २४...	१२१
२४.	२४.	वचनामृत २४...	१२५
२५.	...	अमृतवचनावली...	१३४

।। श्रीमन्महाप्रभुश्रीवल्लभवचनामृत ।।

(८४ वैष्णवनकी वार्ता निजवार्ता तथा घरुवार्ता में उपलभ्यमान वचनामृत)

(१)

दामोदरदाससों श्रीआचार्यजीने पूछी जो ''दमला! तें कछु सुन्यो?'' तब दामोदरदासने कह्यो जो ''महाराज! मेंने श्रीठाकुरजीके बचन सुने तो सही परि समुझ्यो नाहिं''. तब श्रीआचार्यजी आप कहे जो

मोकों श्रीठाकुरजीने आज्ञा कीनी हे जो तुम जीवनकों ब्रह्मसम्बन्ध करवावो, तिनकों हों अंगीकार करूंगो. ओर जिनकों तुम नाम देउगे तिनके सकल दोष निवृत्त होइंगे. तातें ब्रह्मसम्बन्ध अवश्य करनो.

भावप्रकाश: दामोदरदासने कही जो मेंनें श्रीठाकुरजीके बचन सुने परि समुझ्यो नाहिं. ताको कारन यह जताये जो एकादशाध्यायमें भगवद्गीतामें श्रीठाकुरजीके बचन हें जो अपुने पढिकै समुझ्यो चाहे सो समुझे न जाय. जब गुरु कृपा करें तब समुझ्यो जाय. तातें श्रीठाकुरजीके कहेतें दामोदरदास समुझें तब श्रीठाकुरजीके सेवक भये. तातें दामोदारदास तो श्रीआचार्यजीके सेवक हें जब श्रीआचार्यजी समुझावें तब ही समुझे. यह कहि यह जताये जो हृदयमें दृढ़ ज्ञान गुरुकी कृपा ही तें होय. स्वामि-सेवक-भाव प्रकट दिखाये जो दामोदरदास समुझे तो श्रीआचार्यजीकी बराबरि ज्ञान कह्यो जाई! तातें कहे में समुझ्यो नाहिं. अथवा कहे जो में समुझ्यो नाहिं, सो मेरे

समुझिवेको कहा प्रयोजन हे? आप कहें ताके समुझिवेको प्रयोजन मोकों हे.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.१।प्र.१)

(२)

पहेले दामोदरदास श्रीगुसांईजीकी आधी गादी दाबिके बैठते. सो एक दिन श्रीआचार्यजी महाप्रभुने देख्यो. तब श्राआचार्यजीने दामोदरदाससों पूछी जो ''दमला! तू श्रीगुसांईजीकों कहा करिके जानत हे?'' तब दामोदरदासने कही जो ''महाराज हों तो इनकों तुम्हारे पुत्र करिके जानत हुँ''. तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु दामोदरदाससों कहें जो :—

जेसें तू मोकों जानत हे तैसे इनको स्वरूप जानियो.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.१।प्र.७)

(३)

एक समें श्रीआचार्यजीसों कृष्णदास (मेघन)नें प्रश्न पूछ्यो जो ''महाराज! श्रीठाकुरजीकों प्रिय वस्तु कहा हे?'' ताको प्रतिउत्तर श्रीआचार्यजी कहत हें जो :—

श्रीठाकुरजी उत्तमतें उत्तम वस्तुके भोक्ता हें. परन्तु गोरस अतिप्रिय हे. 'गोरस' शब्देन वाणी कहियत हे. ताको भाव अनिर्वचनीय हे. ओर सबनतें भक्तको स्नेहमय प्रभाव अतिप्रिय हे. जातें भक्तवत्सल कहावत हें.

तब कृष्णदासने फेर पूछी जो ''श्रीठाकुरजीकों अप्रिय वस्तु कहा हे?'' तब श्रीआचार्यजीनें कह्यौ जो :—

श्रीठाकुरजीकों धुआँ समान अप्रिय ओर कछु नाहिं हे. ताहूतें अप्रिय श्रीठाकुरजीकों भक्तको द्वेषी हे.

भावप्रकाश : गोरस सो वैष्णवको स्नेह परस्पर, ओर वैष्णवको क्लेश सो धुंआ. जहां स्नेह तहां श्रीठाकुरजी पधारे जानिये. जहां क्लेश तहाँतें श्रीठाकुरजी दूरि जानिए.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.२।प्र.५)

(४)

एक समे श्रीआचार्यजीसों कृष्णदासनें फेर प्रश्न पूछ्यो जो ''भक्त होइके श्रीठाकुरजीकी लीलाको भेद नाहिं जानत सो काहेंते?'' तब श्रीआचार्यजीने कह्यो जो :—

ये विधिपूर्वक समर्पन ज्यों कह्यो हे त्यों नाहिं करत. विधिसों समर्पन पदार्थको ज्ञान नाहिं. अहन्ता-ममता, अपनी सत्ता-अहंकार, को समर्पन. जो अब दास भयो — प्रभु-आधीन हों — प्रभु करें सो सर्वोपरि सिद्धान्त हे. यह भेद अपनेमें नाहिं.अपनी योग्यता मानि भगवदीयको संग नाहिं करत हे. तातें योग्यता मानें तब प्रभु अप्रसन्न होई जात हे. यह मारग दैन्यको हे. सो दैन्य नाहिं हे. इत्यादिक अन्तरायतें अपनो स्वरूप ओर भगवदीयको

स्वरूप, श्रीठाकुरजीको स्वरूप नाहिं जानत हे. ओर भगवद्भक्तको संग करे तो श्रीठाकुरजीकी लीलाको भेद जाने. सो तो योग्यता समजि नाहिं करत हे. ओर जो कछु करत हें सो अन्त:करणपूर्वक नाहिं करत हे. तातें श्रीठाकुरजीको स्वरूप ओर लीला को भेद नाहिं जानत हे. उत्तम भक्तको संग करे. श्रीभागवत सुबोधिनीजी आदि ग्रन्थको अहर्निस अवगाहन करे. तब भगवद्भाव उत्पन्न होई. श्रीठाकुरजी व्रजभक्तन् विषे सदैव रहत हें. तहां सेवा करिके बंधे हें. तहां एतन्मार्गीय वैष्णव ताके हृदयमें श्रीठाकुरजी बिराजत हें. ताको संग करनो. तहां गज्जनधावन आदि वैष्णवको दृष्टान्त दीनों. जिन-जिनने भावपूर्वक सेवा करि तिन-तिनके सकल मनोरथ सिद्ध भये. जातें लीलास्थ व्रजभक्तन्के भावको विचार करनो. जो वैष्णव श्रीठाकुरजीको स्वरूप जानत हे तिनको स्वरूप अलौकिक दृष्टिसों जान्यो जाय. जो आज्ञा होइ सो जाने. जो वैष्णव श्रीठाकुरजीकों जानत हे सो जो कछु काज करत हे सो श्रीठाकुरजीके अर्थ करत हे. ओर श्रीठाकुरजी विषे विरह-ताप-भाव करत हे. अपुने स्वदोषको विचार करत हे. (ऐसो जीव) अपनो स्वरूप विचारें जो हों कौन हों? पहेले कहा हतो? भगवत्सम्बन्ध कियेतें हों कौन होय गयो? अब मोकों कहा कर्तव्य? रात्रिदिवस ऐसे विचार करत रहे तब अपनो स्वरूप जाने. ये प्रागट्य श्रीव्रजभक्तन्के अर्थ हे. तातें उत्तमे संग होइ तो एतन्मार्गीय

ठाकुरकों जाने. ओर शास्त्र पुरान अनेक इतिहास हैं. तातें व्रजराजके घर प्रगटे सो स्वरूप जान्यो न जाय. ये ठाकुर तो तब ही जानें जाय जब भगवद्भक्तको संग करे. सेवाको प्रकार एतन्मार्गीय वैष्णव जानत हैं. तिनसों मिलि, भाव पूछिके सेवा करनी. तब भगवद्भाव उत्पन्न होइ. श्रीठाकुरजीकी लीलाको सब भेद जाने.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.२। प्र.६)

(५)

श्रीठाकुरजी उत्तमतें उत्तम वस्तुके भोक्ता हैं. उत्तमतें उत्तम सामग्री होइ सो श्रीठाकुरजीकों समर्पिये.

श्रीआचार्यजीने आज्ञा दीनी जो :—

उतर्यो परकालो (वस्त्रको थान) होय तामें तें श्रीठाकुरजीकों न समर्पिये. सारे परकालेमेंतें प्रथम श्रीठाकुरजीकों लीजिये. ओर उत्तम सामग्री होइ तामें तें ओर ठौर न खरचिये.

ता पाछे स्त्री-पुरुष (दामोदरदास संभलवारे) नीकी भांतिसों सेवा करन लागे.

भावप्रकाश : पाछे वस्त्रादिककी रीति बताये. जो ओर कार्यमें कछु आयो होय तो (सो वस्तु) श्रीठाकुरजीके काम न आवें. जाके अर्थ उठे तिनको प्रसादी कहावे. तातें पहले श्रीठाकुरजीको सब सामग्रीमेंतें लेनो.

श्रीठाकुरजीकी सामग्रीमेंतें अन्य ठौर खरच न करनो. या प्रकार पुष्टिमारगकी रीति सबकों बताये. जारि, झरोखा, निजमन्दिर, तिबारी, चोक, टेरा, परदा, जेसें लीलासृष्टिमें करत हतें ताही भावसों सगरे मन्दिरकों ब्योंत किये.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.३। प्र.१)

(६)

श्रीआचार्यजीसों वैष्णवने आइ कही, ''महाराज! श्रीद्वारकानाथजी वैभवसहित पधारे हैं''. ता समें श्रीगोपीनाथजी ठाडे हते. (तब) श्रीगोपीनाथजी कहे, ''लक्ष्मीसहित नारायण पधारे''.

तब श्रीआचार्यजी कहें :—

वैभव ठाकुरको देखिके तिहारो मन प्रसन्न भयो हे!

(तब) श्रीगोपीनाथजी कहे :—

''तिहारो कहाइके श्रीठाकुरजीकी वस्तुमें अपनो मन करेगो ताको निरमूल नास जायगो.''

तब श्रीआचार्यजी कहें :—

''हमारो मारग तो ऐसोई हें.''

सो द्रव्यतें कछुक गोपीनाथजी प्रसन्न भये हते सो एक पुत्र भयो परन्तु बंस नाहिं चल्यो. पाछे श्रीआचार्यजी वैष्णवसों

आज्ञा किये :—

सगरी सामग्री श्रीजमुनाजीमें पधराई देउ. श्रीद्वारिकानाथजीकों हमारे घर पधराई लावो.

पाछें काहू वैष्णवने श्रीआचार्यजीसों बिनती कीनी, महाराज! सामग्री तो दामोदरदासकी स्त्री वैष्णवने पठाई. सो आप अंगीकारि क्यों नाहिं किये? तब श्रीआचार्यजी कहे जो :—

बेटा म्लेच्छ हे. सुनके आवे झगरो करे. द्रव्य दुःखको मूल हे. दामोदरदासकी स्त्रीने पठायो. श्रीमहारानीजीकों अंगीकार हू करायो. लौकिक झगरो हू मिटायो.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.३। प्र.९)

(७)

पद्मनाभदास श्रीआचार्यजीकी सरनि आये. नाम पायो. पाछे समर्पन करवायो. पाछे उत्थापनके समें श्रीआचार्यजीने पोथी खोली. तहाँ दामोदरदास संभलवारेके घर विराजे हते. सो पद्मनाभदास अपने घरतें आये, श्रीआचार्यजीकों दंडौत् करिके बेठे तब आचार्यजीनें निबन्धको श्लोक कह्यो, सो श्लोक :—

''पठनीयं प्रयत्नेन सर्वहेतुविवर्जितम्।
वृत्त्यर्थं नैव युञ्जीत प्राणैः कण्ठगतैरपि।।
तदभावे यथैव स्यात् तथा निर्वाहमाचरेत्।
त्रयाणां येन केनापि भजन् कृष्णमवाप्नुयात्।।''

यह श्लोक पढ़े सो पद्मनाभदासजीने अञ्जुली भरिके संकल्प कियो जो ''कथा कहिके वृत्ति न करूंगो!'' ऐसे श्रीआचार्यजीके आगे संकल्प कियो. तब श्रीआचार्यजी कहें जो :—

श्रीभागवत वृत्त्यर्थ न कहनो; ओरतो, तुम्हारि वृत्ति हे, तुम ब्राह्मन हो, तातें ओर महाभारत इत्यादिक तो कहनो.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.४। प्र.१)

(८)

श्रीयमुनाजीके किनारे (सामने पार कर्णावलमें) श्रीआचार्यजी बिराजे हते. प्रातःकालको समय हे ओर श्रीयमुनाजीको कराड़ो टूट्यो. तामेंतें एक भगवत्स्वरूप जेसे ताड़को वृक्ष (होय) इतने बड़े, श्रीआचार्यजीके आगे आय कहें, ''मेरी सेवा करो''. तब श्रीआचार्यजी कहे, ''महाराज! या कालमें वैष्णवकी सामर्थ्य नाहिं जो आपकी सेवा-शृंगार करे. सेवा कराइवेको मनोरथ होइ तो भक्तनसों पधराये जाय (ऐसे) गोदमें बैठो. तब सेवा होई!'' तब छोटो स्वरूप करि श्रीआचार्यजीके चिबुकसों मस्तक श्रीठाकुरजीको लग्यो इतने बड़े भये. सो स्वरूप श्रीयमुनाजी, गिरिराज, सखा, सखी, गउ, कुंज, चौरासी कोस सगरो स्वरूपात्मक चिह्न सहित हे. तातें श्रीआचार्यजी 'श्रीमथुरानाथजी' नाम धरे. तब श्रीआचार्यजी कहे :—

यथालाभ सन्तोष करि भावपूर्वक सेवा करियो.

तब आज्ञा मांगि श्रीमथुरानाथजीकों कन्नौजमें अपने घर पधराइ

लाये. प्रीतिपूर्वक सेवा करन लागे. (पहले) भिक्षावृत्ति करतें. तब पद्मनाभदासके मनमें आई, जो "में वैष्णव कहाईके भीख मांगौ! श्रीआचार्यजी 'यथालाभ संतोष' सों कहे हें ओर उत्तमपक्ष यही हे "अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः" या प्रकार अव्यावृत्तको नेम ले, सेवा मन लगाईके करन लागे.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.४। प्र.१)

(९)

सो रजो नित्य पकवान सामग्री करि रात्रिकों ले आवती. सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु आरोगते. वाके नेम हतो. सो एक दिन लक्ष्मन भट्टको श्राद्धदिन हतो सो श्रीआचार्यजीने ब्राह्मण भोजनकों बुलाए हते. तहां घृत थोरो सो चहियत हतो.

तब श्रीआचार्यजीने एक वैष्णवसों कह्यो जो "रजोके इहांते घृत ले आवो" सो वैष्णव जाईके रजोसों कह्यो, जो "श्रीआचार्यजी घृत मंगायो हे". तब रजोने वा वैष्णवसों कह्यो, जो "घृत काहेकों मंगायो हे?" तब वा वैष्णवने कह्यो, जो "लक्ष्मण भट्टजीको श्राद्धदिन आज हे सो ब्राह्मण भोजनको बुलाए हें तहां घृत घटचो हे. सो तातें मंगायो हे". तब रजोने कह्यो जो "घृत मेरे नाहिं हे, जाय कहियो". तब वैष्णव फिरि आयो ओर श्रीआचार्यजीसों कह्यो जो "महाराज! रजोकें घृत नाहिं हे". तब श्रीआचार्यजी कहे जो "एकबार तू फेरि जा. खीजिके कहियो जो घृत दे". तब वह वैष्णव फेरि आयो. रजोसों कह्यो जो "श्रीआचार्यजी खीझत हें. तातें घी देउ". तोहू रजोने घृत दीनो नाहिं. कह्यो "मेरे घृत नाहिं हे, कहांते देउं?" तब वैष्णव फिरि आय श्रीआचार्यजीसों कह्यो जो "महाराज! रजो

घृत नाहिं देत". पाछे ओर ठौरतें घी मंगाय काम चलायो. पाछे रात्रि भई तब रजो सामग्री सिद्ध करि श्रीआचार्यजीके पास आई तब श्रीआचार्यजी पीठि दे बेठे. तब रजोने कह्यो जो "महाराज! जीव तो दोषतें भर्यो हे. अपराध कहा? जो आप दरसन नाहिं देत?" तब श्रीआचार्यजीने कह्यो जो "आज लक्ष्मण भट्टजीको श्राद्ध हतो सो तेनें घृत क्यों नाहिं दीनो?" तब रजोने कही, "मेरे घी नाहिं हतो". तब श्रीआचार्यजीने कही, "सामग्री कहांतें करि लाई?" तब रजोने कही, "महाराज! आपुके घरमें हू घी हतो क्यों नाहिं लिये?" तब श्रीआचार्यजी कहे, "उह तो श्रीठाकुरजीको हतो. वामेंतें कैसें लियो जाई?" तब रजोने कही, "मेरे घरमें कौन हे? श्रीठाकुरजीतें अधिक आपको स्वरूप हे. सो आपकी लीलासम्बन्धी सामग्रीमेंतें श्राद्धमें कैसे दऊं? ओर में लक्ष्मन भट्टकी लोंडी नाहिं हों. में तो आपकी लोंडी हों. आप मेरी परीक्षा लेन अर्थ घी मंगायो.

सो पहले वैष्णव पठायो तब तो लौकिक आवेससों घी घटचो. तब आपु कहे, "रजोसों ले आवो". यह लौकिक प्रवाह आज्ञा जानिके मेंने घीकी नाहिं करी. सो पाछें आपु यह मनमें विचारे जो श्राद्धकेलिये ब्राह्मणभोजनमें बेगि चाहिये. फेरि जो उह वैष्णव आईकें कह्यो जो "खीजिके कहे घी देहू" तब में मर्यादा जानी जो पुष्टिकार्यमें क्रोधको प्रयोजन हे नाहिं; काहेतें, भावहीसों सगरी वस्तु सिद्ध हे; ओर, मर्यादामें तो वस्तु बिना कर्मको नास होई, (वस्तुतें) पूरनता हे. तातें वस्तुकेलिये क्रोध हे जो यह वस्तु आवश्यक

चाहिये. तातें मर्यादाकी आज्ञाहु नाहिं माने. ओर मर्यादाके कार्यार्थ घी हू नाहिं दियो. पाछें तीसरे पुष्टिके आवेसतें मांगते तो में घी देती. ओर आपको घी मंगावनो हतो (तो) इतनो उह वैष्णवसों कहि देते जो ''रजोसों कहियो, तेरे पुष्टिधर्ममें हानि नाहिं हे, घी दीजो'' तो में काहेकों फेरती? ओर महाराज! जानि बूझिके कूआमें कैसे परूं?

आपुकी कृपातें इतनो ज्ञान भयो तब में घी नाहिं दियो. आपु तो बुद्धिप्रेरक हो! मेरे हृदयमें बैठिके घी देवेकी नाहिं कहे.उहांके घी मंगाये सो में बिना मोलकी दासी हों. आपु कृपा करिये.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.५। प्र.१)

(१०)

ओर एक समय श्रीआचार्यजी महाप्रभु कासी पधारे. सो सेठ पुरुषोत्तमदासके घर उतरे. तब सेठ पुरुषोत्तमदासके ठाकुर श्रीमदनमोहनजीकों पञ्चामृतस्नान कराइ आपु भोग धरि भोजन किये. तब दामोदरदास हरसानीनें श्रीआचार्यजीसों बिनती करी जो ''महाराज! यह कहा? यहां पञ्चामृत ठाकुरकों न्हवाए?'' तब श्रीआचार्यजी कहे :—

जदपि यह हमारी आज्ञातें नाम देत हे, तउ इतनी मर्यादा राखी चाहिए.

भावप्रकाश : याको आसय यह जो सेवक करें ताके सन्मुख शिष्यके पाप आवत हें, सो गुरु सामर्थ्यवान होई, सो पापकों जरावे. सो सेठ

जदपि मेरी आज्ञातें नाम देत हें, भगवदीय हें, तातें पाप कहा करें याकों; परन्तु, तउ मर्यादासों सेव्यकों पञ्चामृतके न्हवाएतें सेठके पञ्चतत्त्वको सरीर सुद्ध होय, एक यह गौणभाव. ओर उत्तम भाव यह जो सेठ श्रीमदनमोहनजीकी श्रीआचार्यजी महाप्रभुके भावसों सेवा करत हें. तातें श्रीआचार्यजी पञ्चामृतस्नान कराई, श्रीगोवर्धनधररूप करि भोग धरत हें. यह मुख्य भाव जाननो.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.६। प्र.६)

(११)

एक दिन रामदासजी प्रयागतें अडेलमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुनके दरसन करन आये. सो पांचो कपरा पहरि हथियार बांधि दंडौत किये. तब श्रीआचार्यजी रामदाससों देखिकें कहे, ''धन्य हे!'' तब वैष्णव पास बैठे हे सो कहन लागे, ''महाराज! अब याकों धन्य क्यों कहत हो? याकी अपरस तो छूटी, सिपाइनमें रहत हे, हथियार बांधत हे?'' तब श्रीआचार्यजी कहे :—

यह धन्य हे! श्रीठाकुरजीकों श्रम नाहिं करावत हे. तातें या समान धीरज काहूकों नाहिं.

यह श्रीमुखतें कहे.

भावप्रकाश : ताको कारन यह जो कहा बहोत अपरससों कार्य होत हें? पुष्टिमार्गीय धर्म बहोत कठिन हे. द्रव्य सगरो गयो, रिन माथे भयो, परन्तु धीरज नाहिं छूट्यो. सो कहा? जो मन श्रीठाकुरजीमें रह्यो. हृदयके भीतर चिंतारूप कष्ट नाहिं भयो. पाछें श्रीठाकुरजी रिन चुकाये. सो मनमें प्रसन्न न भयो. चाकरीको कार्य कियो. अब दीनता याकों भई हे, मन श्रीठाकुरजीमें हे. या आसयतें श्रीआचार्यजी 'धन्य!' कहे.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.७। प्र.१)

(१२)

भावप्रकाश : तब गदाधरदासजीके काकाने महाप्रभुजीसों पूछ्यो महाराज! ठाकुरजी तो एक हैं परंतु वैष्णवसंप्रदायमें न्यारे-न्यारे क्यों मानत हैं? कोई कृष्णकों कोई रामकों, कोई नृसिंह आदि, कोई नारायण आदि, तामें निश्चय कौंन ठाकुर हैं?

तब आचार्यजी कहे ''जैसे चक्रवर्ती राजाको राज तो सगरी पृथ्वी पर, और राजा देस-देसके गाँव-गाँवके, सोऊ 'राजा' कहावे परंतु चक्रवर्तीराजाके आज्ञाकारी. तैसे ही पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, सो सर्वोपरी, और अवतार अंशकला करिके होइ, सब कृष्णके आज्ञाकारी. ठाकुर सबकों कहिये.

तब गदाधरदासको काका चुप करी रह्यो.

तब गदाधरदासने विचार्यो जो एक स्वरूप तो मेरे काकाके घर है सो कैसे मिले? मैं तो या बहिर्मुखसों बोलत नांही हों. यह विचार करत बाहर निकसे माला तिलक करिके. सो गदाधरदासके काकाने पूछी जो सेवक भये तो भली करी परंतु मेरे घर तो चलो. तब गदाधरदासने कही मोकों तिहारे धरमें ठाकुर हैं सो देउ तो मैं चलूं. तब उनने कही जो ले जाओ मेरे ठाकुरसों कहा काम है! तब गदाधरदास काकाके संग वाके घर गये. श्रीठाकुरजी मांगे. वाके बाद उनने श्रीठाकुरजी दिये और श्रीठाकुरजी पधराके लाये, महाप्रभुजीने पंचामृत स्नान कराके उनको 'मदनमोहनजी' नाम धर्यो. और तब तीन दिन गदाधरदास श्रीआचार्यजीके पास रहे. सेवाकी सगरी रीति सीखि. सो श्रीआचार्यजी 'भक्तिवर्धिनी' ग्रंथ किये, ताको व्याख्यान किये तामें यह कहे जो -

''अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः।
व्यावृत्तोपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यतेत् सदा''॥

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.८। भा.प्र)

(१३)

एक दिन गोविंददासने केसोरायजीकी सैया-निंवार भराए. सो बुननवारेको मेवा खवाइ बुनाये. सो बहोत सुन्दर भई. ओर मथुराके हाकिमने खाट निवारसों बुनाई. तब काहूने कही, ''केसोरायजीकी सैया जेसी भई तैसी न भई''. यह सुनिकें वह हाकिम केसोरायजीके मन्दिरमें आयो. सो तिवारीमें केसोरायजीकी सैया धरी हती, तापर चढि बैठ्यो. सो कोईने गोविंददास भल्लासों कही जो ''मथुराको हाकिम आइ श्रीठाकुरजीकी सैयापे बैठ्यो हे''. तब गोविंददास गुपती लेत आये. सो हाकिमकों उहांई मार्‍यो. पाछें हाकिमके मनुष्यनूने गोविंददासको अपराध कियो. यह बात मथुराके वैष्णवनूने सुनी. सो गोविंददासकी देहको अग्नि-संस्कार कियो. पाछें यह बात एक वैष्णव श्रीआचार्यजीसों कहे, ''महाराज! ऐसे वैष्णवकी यह गति कैसे भई?'' तब श्रीआचार्यजी महाप्रभुनने कही :—

याके परलोकमें तो कछु हानि नाहिं भई (परि) यह मेरी आज्ञा न मान्यो तातें ऐसो भयो.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.११। प्र.२)

(१४)

एक समय नारायनदास श्रीगोकुलचन्द्रमाजीको शृंगार करि शृंगार-भोग खीर सिद्ध कियो. थारमें पधरायो. इतनेमें एक वैष्णवने नारायनदासकों बधाई दई जो ''श्रीगोकुलमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु पधारे हें''. तब नारायनदास ताती खीर भर्यो थार श्रीगोकुलचन्द्रमाजीकों भोग धरिकें श्रीआचार्यजीके दरसनको श्रीगोकुल चले. सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु महावन पधारत हते सो मारगमें दरसन भयो. तब नारायनदासने दंडौत् कियो. तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु श्रीमुखतें कहें, ''नारायनदास!

श्रीठाकुरजीको कहा समय हे?'' तब नारायनदासने बिनती करी, ''महाराज! शृंगार-भोग धरि आपुके दरसनकों आयो हों''. तब श्रीआचार्यजी उतावलि पधारे. सो तत्काल अस्नान करि मन्दिरमें पधारे, झारी लिये. तब देखे तो श्रीगोकुलचन्द्रमाजी हाथ खेंचि रहे हें. श्रीहस्त खीरसों भरे हें. सिंघासनपर, वस्त्रनूपर खीरके छांटा परे हें. तब श्रीआचार्यजीने श्रीगोकुलचन्द्रमाजीसों पूछयो जो '' बाबा! हस्त क्यों खेंचि रहे हो?'' तब श्रीगोकुलचन्द्रमाजीने कही, ''नारायणदास ताती खीर समर्पिके गयो. सो में हस्तसों खीर उठाई. सो ताती लागी. तब में हस्त झटकिकें अंगुरि चाटी हे. सो मेरो ओष्ठ हस्त दाझें हें ओर मन्दिरमें जहां तहां छांटा परे हें''. तब श्रीआचार्यजी श्रीहस्त ओष्ठ देखे तो अत्यन्त आरक्त हें. तब खीर पंखासों सीरी करिके भोग समर्पि आपु बाहिर आये. तब नारायनदासकों खीजिके कहें:—

''क्यों तू श्रीठाकुरजीकों ताती खीर समर्पी?''

तब नारायनदासने कही:—

''महाराज! आपुकी बधाई सुनि उतावलिमें खीर समर्पी''.

तब श्रीआचार्यजी कहें:—

''आजु पाछें ऐसो काम कबहू मति करियो''.

भावप्रकाश: याको आसय यह जो नारायनदास श्रीआचार्यजीकी बधाई सुनि परवस व्हे गये. सो जाने, जो ताती होइगी तो श्रीठाकुरजी सीरी करि लेंइगे परन्तु श्रीआचार्यजीके दरसनकों ढील करनो धरम नाहिं. या भावसों गये. तब श्रीगोकुलचन्द्रमाजी, ''नारायनदासके हाथको धर्यो तातो

हू अरोगत हों'' यह जताइवेकेलिये सगरो हस्त खीरमें डारि झटकें. तथा उतावलिमें जो कोई भोग धरें, शृंगार करें, तो कछु अपराध परे यह जताए. ओर नारायनदास श्रीआचार्यजीके पास जाइवेकों मन कियो अलौकिक, तउ सेवामें इतनो श्रम श्रीठाकुरजीकों भयो जो लौकिक वैदिक कार्यकेलिये उतावलि करें, ताको तो बहोत ही अपराध परे. तातें सेवा करत मन ठिकाने राखनो. अथवा खीरकी सामग्रीको स्वरूप प्रगट कियो जो यह श्रीस्वामिनीजीके भावकी हे. ओर शृंगार-भोग हू उनहिके भावको हे. तातें खीरको देखत श्रीठाकुरजी प्रेमसों प्रथम हस्त खीरमें डारत हें. तातें खीर सीरी करि अंगुरी डारि देखिये. सुहाय तब भोग धरिये. यह सिद्धान्त दिखाये.

पाछें समय भये श्रीआचार्यजी आचमन, मुखवस्त्र कराइ, बीडी अरोगाई, भोग सराये तब श्रीगोकुलचन्द्रमाजी श्रीआचार्यजीके दोउ श्रीहस्त पकरिके कहे जो ''यह खीरमहाप्रसाद आपु लेहु. तब श्रीआचार्यजी कहें जो ''महाराज! ज्ञाति-व्यौहार कठिन हें, तातें मर्यादा राखी चाहिये''. तब श्रीगोकुलचन्द्रमाजी कहें, ''मेरी आज्ञा हे तातें लेहु''. तब श्रीआचार्यजी खीर महाप्रसाद अरोगे. सो तब ताही दिनतें खीर अनसखड़ीमें होति हे.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.१४। प्र.४)

(१५)

सो एक समय श्रीआचार्यजी महाप्रभु पृथ्वीपरिक्रमा करत महावन पधारे. सो तब वा क्षत्राणीने ब्रह्माण्डघाटपे श्रीयमुनाजीमेंतें चारों स्वरूप प्राप्त भये हते, सो वे चारों स्वरूप लायकें श्रीआचार्यजीके पास राखे. सो श्रीआचार्यजीने चारों स्वरूप चारों वैष्णवनके माथे पधराये. श्रीनवनीतप्रियजी गज्जनधावनके माथे पधराये, श्रीगोकुलचन्द्रमाजी नारायनदासके माथे पधराये, श्रीलाडलेशजी जियदास सूरी क्षत्रीके माथे पधराये. श्रीललितत्रिभंगीजी देवा कपूरके माथे पधराये. ओर

चारों वैष्णवनसों श्रीआचार्यजीने कही :—

ये मेरे सर्वस्व हें सो तिहारे माथे पधराये हें. सो सेवा प्रीतिसों नीकी भांतिसों करियो; ओर, तुमसों न बनि आवे तब हमारे घर पधराइयो.

सो चारोंकों सेवाकी रीति बताये.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.१५। प्र.१)

(१६)

सों दिनकारदासकों कथाके ऊपर बहोत आसक्ति हती. सों श्रीआचार्यजी महाप्रभु अड़ेलमें कथा कहते. तब एक दिन दिनकरसेठ यमुनाजीके तीर रसोई करनको गये. तहां नाहीके चून सानीके अंगाकरि गढि. पातरि पर धरि उपरा बराई दियो. ताही समय श्रीआचार्यजीको जलघरिया जल भरन आयो. तब तासों दिनकरदासने पूछी 'जो श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहा करत हैं'? तब जलघरियाने कही 'श्रीआचार्यजी पोथी खोले हैं. अब कथा कहेंगे'. तब दिनकरसेठ उन जलघरियाके वचन सुनत ही कच्ची लीटी ले जलपान किये. सेके नाही. बेगि ही आय कथा सुने. पाछे कथा श्रीआचार्यजी कहि चुके तब जलघरियाने श्रीआचार्यजीसों कह्यो 'महाराज, दिनकरसेठ कच्ची अंगाकरि बिना सेकी खायके आयो है'.

तब श्रीआचार्यजी दिनकरसेठ ते पूछे तु बिना सेकी अंगाकरि क्यों खायो?

तब दिनकरसेठ बोले 'महाराज, अंगाकरि तो नित्य सेकीके लेऊंगो परन्तु यह आपुके मुखसों कथामृत कब सुनुंगो? जो अंगाकरि सेकतो तो यह अमृत कैसे मिलतो?'

तब श्रीआचार्यजी बहोत प्रसन्न होईके कहे—

आजु पाछे रसोई संवारीके भोग धरीके महाप्रसाद लेके आईयो. जब तु आवेगो तब कथा कहुंगो. तेरे आये बिना कथा न कहुंगो. आजुते तु मुख्य कथाको श्रोता है.' ता पाछे दिनकरसेठ हु बेगि रसोई करते. जो श्रीआचार्यजी मेरे लिये बैठि रहें सो आछो नाही. और कोई दिन रंच ढील हु लगे तब दिनकरसेठ आवे तब आपु कथा कहेतें.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.१८। प्र.१)

(१७)

भावप्रकाश: महाप्रभुजीने कही तुम कायस्थ हो तो पुष्टिमार्ग कैसे सधेगो? तब मुकुन्ददासने कही महाराज, आपकी कृपासु सब सधेगो. आपकी कृपा शूद्र चांडाल पर होई तो वासों सब सधे. आपकी कृपा बड़े पंडित ब्राह्मणनूपर न होई तो वासों न सधेगो. तातें आप हमकु कृपा करिके शरणी लेउं. सों शरणके कृपासु हमारो कल्यान होवेगो. **तब आचार्यजी प्रसन्न होयके कहे 'हम जाने के ये कृष्णदास मेघनको काम है'** मुकुन्ददासको न्हवायीके नामनिवेदन कराये, सो कछुक दिन वहां आचार्यजीके पास रहिके मार्गकी रीति सब सीखें. पाछे विनती करी 'महाराज, आज्ञा होय तो घर जाय. अब हमको कहा कर्तव्य है?' तब महाप्रभुजीने कही—

तुम ये ब्रह्मसम्बन्धको पत्र ले जाओ. या मन्त्रकी तुम सेवा करो. जो कछु खानपान करो सो इनकों भोग धरिकें लीजो.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.१९। प्र.१)

(१८)

सो एक दिन श्रीआचार्यजी महाप्रभु मथुरा पधारे. सो विश्रान्तघाट

पास आय बैठक हे तहां सन्ध्यावन्दन करत हते. पास चार वैष्णव ठाड़े हते. दामोदरदास हरसानी, कृष्णदास मेघन, प्रभुदास ओर एक वैष्णव मथुराको हतो. सो तब तहां रूप-सनातन, कृष्णचैतन्यके सेवक, श्रीआचार्यजीके पास दरसन करि दण्डौत किये. पाछें रूप-सनातननें श्रीआचार्यजीसों पूछ्यो जो "महाराज! ये वैष्णव कौन हें?" तब श्रीआचार्यजीने कही, "ये हमारे सेवक हें".

तब रूप-सनातनने कही :—

"महाराज! आपको मारग तो पुष्टि हे ओर ये दुबरावल क्यों हें?"

तब श्रीआचार्यजीने कही :—

"हम तो इनकों बरजे, जो यह मारगमें मति परो, परन्तु ये मेरो कह्यो न मान्यो ताकों फल भोगत हें".

या प्रकार गूढ़ रीतिसों श्रीआचार्यजी कहें.

भावप्रकाश: काहेते? कछूक श्रीआचार्यजीके स्वरूपको ज्ञान हतो. तातें कछूक समुझे जो सगरो समुझते तो उनकी देह छूटि जाती. ओर श्रीआचार्यजी कहें, "यह मारगमें मति परो सो कह्यो न मान्यो तब फलदशाकों भोगे. जेसे पञ्चाध्यायीमें व्रजभक्तनूसों श्रीठाकुरजी कहें "घर जाउ" परन्तु व्रजभक्त यह बात न मानें. तब रासलीलाके फलकों पायें. सो अब तो मर्यादारीतिसों कहें. काहेते? वेदकी मर्यादा यह जो सेवक होवनकों आवे तो एक बार ना कहनो. उह सेवकको भावदृढ़ता देखनकों. पाछे वाके पूरनप्रीति सेवक होनकी होय तो सेवक किये वाको फल मिले, ताते वैष्णवकों 'ना' कहनो ओर "यह मारगमें मति परो" सो यह मारग व्रजभक्तनूको हे जैसे व्रजभक्त

सर्वसमर्पन करि सरन भये तब खान-पान देहसुख सब छूट्यो, विप्रयोगकी फलदशाकों भोगत हें. ताते देह कृष होय विरहके उसास उठें नेत्रनमें जल भर आवे, कण्ठ रुकि जाये, सगरि देहमें पसीना होय, मूर्च्छित होई, हंसि परे, रुदन करें, निर्त करे इत्यादि भक्तके लक्षन हें.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.२०।प्र.१)

(१९)

श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप दोय श्लोक कहिकें व्रजको स्वरूप दिखाये. सो श्लोक :—

"वृक्षे-वृक्षे वेणुधारी पत्रे-पत्रे चतुर्भुजः।
यत्र वृन्दावने तत्र लक्ष्यालक्ष्यकथा कुतः !॥
जलादपि रजः पुण्यं रजसोऽपि जलं वरम्।
यत्र वृन्दावनं तत्र स्नात्वास्नात्वा कथा कुतः"॥

यह कहें कृपा करिकें सो प्रभुदास व्रजको स्वरूप अलौकिक देखें.

भावप्रकाश: वृक्ष-वृक्षके नीचे वेणुधारी साक्षात् श्रीगोवर्धनधर भक्तनूके संग लीला करत हें. ऐसे वृक्ष भगवदीय हें. तिनके पत्र कैसे हें? चतुर्भुजरूप हें. तथा वृन्दावनके वृक्ष-वृक्ष वेणुधारी श्रीगोवर्धनधररूप हें. तिनकों आसय, चतुर्भुजरूप नारायन पत्ररूप होई आश्रय वृक्षनूको कियो हे. ऐसो वृन्दावन हे सो 'लक्ष्यालक्ष्य' कथा हे. लौकिक लोगनूकों अलक्ष्य हे ओर भगवदीयनूकों स्वरूपात्मक हे सो कथा कही न जाय या बातकों भक्तजन जानें, कृष्णरूप जानें. कृष्णरूप वृक्ष हें सो लोगनूकों न दीसें. तैसेई श्रीवृन्दावनकी रजसों जल श्रेष्ठ हे ओर जलतें रज श्रेष्ठ हे. तहां न्हायवेकी कथा कहा कहिये? भावे जलसों न्हाय, भावे रज लगाये. सो रज उडिके लागी तब न्हायवेकी अपेक्षा रही नाहिं परन्तु मर्यादाके लिये न्हानो.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.२०।प्र.३)

(२०)

सो एक समय श्रीआचार्यजी महाप्रभु श्रीगोवर्धनधरके मन्दिरमें श्रीगोवर्धनधरको शृंगार करत हते तब यह मनमें आई जो आजु दहीं होय तो समर्पिये. तब प्रभुदाससों कहे :—

''जा, कहुं दहीं मिले तो ले आव''. तब प्रभुदास चले सो एक अहिरनी मिली तब वासों पूछे, ''तेरे पास दहीं हे?'' तब उन कह्यो, ''दहीं मीठो सुन्दर हे. परन्तु तू मोकों कहा देयगो?'' तब प्रभुदासने कही, ''दहीं मोकों दे. जो तू मांगे सो में तोकों देऊं''. तब अहिरनीने कही, ''एक टका दे. ओर कहा तू मोकों मुक्ति देईगो?'' तब प्रभुदासने कही, ''जा, तोकों टका ओर मुक्ति दोउ दीनें''. तब अहिरनीने कही, ''में केसे मानों?'' तब प्रभुदासने एक कागदपर लिखि दीनों जो ''दहींके पलटें मुक्ति दीनी''. तब अहिरनी अपने अंचलसों बांधिके अपने घर आई. ...यहां श्रीआचार्यजी दहीं भोग धरें. तब श्रीनाथजी कहे, दहीं बहोत मीठो हे. पाछें मन्दिरतें पधारें तब श्रीआचार्यजी कहें, ''प्रभुदास! दहीं बहोत मीठो सुन्दर लायो. कहा दियो?'' तब प्रभुदासने कही, ''महाराज! महा मोंघो आयो हे. दहींके पलटें मुक्ति दीनी हे''. तब श्रीआचार्यजी कहें, ''भक्ति क्यों न दीनी? श्रीठाकुरजी प्रीतिसों आरोगे, मुक्ति तुच्छ कहा दीनी?'' तब प्रभुदास कहें, ''महाराज!

मुक्ति उनने मांगी. जो भक्ति मांगती तो भक्ति देतो''.

भावप्रकाश: याको कारन यह जो ता दिन दान एकादसी हती सो वा दिना दहीं अवश्य चहिये. तातें श्रीआचार्यजी कहें, ''आजु दहीं आवश्यक चाहिये''. ओर श्रीआचार्यजीके सेवकको माहात्म्य दिखायो जो भक्ति-मुक्ति देवेको सामर्थ्य हे.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.२०।प्र.४)

(२१)

पूरनमलकी गांठिमें द्रव्य बहोत हतो. सो एक समय रात्रिकों पूरनमलकों दैवी जीव जानि श्रीगोवर्धनधर स्वप्नमें कहे जो ''व्रजमें गोवर्धन पर्वत हे, तहां हम प्रगट भये हें, सो तू आयके हमारो मन्दिर समराव; ओर, श्रीआचार्यजीको सेवक होउ''. तब पूरनमल जागिकें सवेरे भये सगरो द्रव्य भेलो करि व्रजमें गोवर्धनधरके आई दरसन किये. पाछें रामदास भीतरियासों पूछे जो ''मोंकों श्रीनाथजीने मन्दिर संवराइवेकी आज्ञा दीनी हे सों में आयो हूँ''. तब रामदास सदूपांडे सब कहें जो ''श्रीनाथजी तो श्रीआचार्यजीके ठाकुर हें सो अब दोय-चारि दिनमें श्रीआचार्यजी पधारिवेवारे हें. तब उनसों पूछिके उनकी आज्ञा होइ तो मन्दिर संवराऊ. पाछें श्रीआचार्यजी पधारे तब पूरनमलनें दंडौत करि बिनती करी जो ''महाराज! मोकों सेवक करिये ओर श्रीनाथजी मन्दिर संवरायवेकी आज्ञा करी हे सो आपु आज्ञा देउ तो में संवराऊं''. तब श्रीआचार्यजी पूरनमलकों नाम-निवेदन कराय कहें, ''आगरेतें कारीगर बुलावो''. सो पूरनमलने कारीगर बुलाये तब श्रीआचार्यजी वासों कहे :—

मन्दिरको नकसा करि ल्यावो. तब कारीगरने

मन्दिरको नकसा सिखरबंद कियो, धुजा-कलस-सहित. तब श्रीआचार्यजी कारीगरसों कहे, ''हमारे ठाकुरको मन्दिर सिखरबंद धुजा-कलसको नाहिं. नन्दराइजीके घरकी नाँई करो''. तब कारीगरने दूसरी बेर घरकी नांई कियो. तब श्रीआचार्यजीके हस्तमें नकसाको कागद आयो तब उही सिखरबंद-धुजा-कलस-सहित. तब श्रीआचार्यजी कहें, ''सिखरबंद क्यों किये?'' तब कारीगरने कही, ''महाराज! हम तो घरकी नांई किये हते. सो अब सिखरबंद धुजा कलस भये ताको कारन तो हम जानत नाहिं''. तब श्रीआचार्यजी कहें, ''हम बैठे हें, हमारे आगे नकसा तैयार करो''. तब कारीगरने घरकी नांई जेसे श्रीआचार्यजी कहे ता रीतिसों कियो. जब नकसा तैयार भयो तब उही सिखरबंद-धुजा-कलस-चक्र ह्वै गयो! तब श्रीआचार्यजी जाने जो ''श्रीठाकुरजीकी इच्छा यह हे जो जगतमें पूजाय बहोत जीव उद्धार करेंगे. सो देवालयकी रीति यहां राखनी उचित हे.

तब श्रीआचार्यजी श्रीगिरिराजजीसों पूछे जो ''प्रभुइच्छा तुम्हारे ऊपर मन्दिर बनाइवेकी हे सो मन्दिर बनेगो तब लौकिक रीतिसों तुमकों श्रम बहोत होयगो''. तब श्रीगोवर्धनजी कहें, ''हमकों परमसुख हे. हमारे उपर प्रभुकेलिये जो करें तापर में प्रसन्न हों. तातें सुखतें मन्दिरकेलिये लौकिक रीति सब करो. मोकों कछू दुःख नाहिं''.

भावप्रकाश: ताहीतें पाछें श्रीगुसांईजी (हू) वैष्णवकों सेवा दरसनार्थ गोवर्द्धनपर चढ़न देते ओर जहां-तहां बिना सामग्री, सेवा बिना, चढ़नकी

आज्ञा नाहिं.

तब श्रीआचार्यजी पूरनमलकों आज्ञा दीनी, ''बेगे मन्दिर संवरावो'' सो मन्दिरकी नींव खोदी. सो नींव भरि गई, इतनेमें पूरनमलको द्रव्य सब निघट गयो. तब पूरनमल कमायवेकों गये.

भावप्रकाश: सो द्रव्य घट्यो ताको अभिप्राय यह हे जो पूरनमलके पिताको कमायो द्रव्य हतो सो पिताके मरे पुत्रकी सत्ता होइ; तातें, पूरनमलकी सत्ता जानिकें श्रीनाथजी अंगीकार किये. परन्तु लौकिक मनोरथ करि पिता द्रव्य कमायो हतो. तातें कार्य सिद्ध न भयो. ओर जो यही द्रव्यसों मन्दिर बनें तो वित्तजा सेवा पूरनमलकी सिद्ध न होई. तातें द्रव्य घट्यो. तब पूरनमल मन्दिरकी सेवा निमित्त कमायवेको गये. यामें यह जताये, वैष्णवकों ब्यौपार करनो तो भगवत्सेवा, गुरुसेवा ओर वैष्णवसेवा को मनोरथ करि करनो. तब ही द्रव्यतें सेवा सिद्ध होइ. तब वित्तजा सेवा कहिये.

पाछें पूरनमल गयो तब ओर वैष्णव राजसी कितनेन कही जो:—

''आज्ञा होय तो हम मन्दिर संवरावें''.

तब श्रीआचार्यजी कहें:—

''पूरनमल आयके संवरावेगो''.

भावप्रकाश: सो याहीतें जो प्रभुने पूरनमलकों मन्दिर संवराइवेकी आज्ञा दई हे सो पूरनमलको मनोरथ सिद्ध करावनो हे.

ता पाछें पूरनमल जवाहरको कसब करि थोडे दिनमें बहोत कमायकें आये.

भावप्रकाश: यामें वैष्णवकों यह जताये जो कछू सेवासम्बन्धी मनोरथ करि व्यौपार करिये; ओर, कार्य सिद्ध होनहार न होई तो व्यौपार हू सिद्ध न होई. तब वैष्णव सब भगवदइच्छा माने, हरख-सोक न करें. प्रभुकों जितनो करनो होइ तितनो सहजहीमें सिद्ध होइ.

सो द्रव्य लेके पूरनमल आये. मन्दिर सिद्ध कराये. तब श्रीआचार्यजी आछो मुहूरत देखिकें श्रीगोवर्धनधरकों मन्दिरमें पधराये. अक्षयतृतीयाके दिन. तब पूरनमलने बहोत द्रव्य खरच कियो. आभूषन वस्त्र सामग्री भेट आदि. तब श्रीआचार्यजी प्रसन्न होइकें पूरनमलसों कहें जो "तेरो मनोरथ होइ सो राखे मति, सब करियो". तब पूरनमलनें श्रीआचार्यजीसों बिनती करी, "महाराजाधिराज! मेरो यह मनोरथ हे जो अपने हाथसों अति सुगन्धको अरगजा श्रीअंगमें समर्पों". तब श्रीआचार्यजी कहें, "सुखेन मनोरथ करो". तब पूरनमलने अत्यन्त सुगन्धको अरगजा सिद्ध करिकें सर्वांगमें लगाये. बहोत आनन्द पाये. तब श्रीआचार्यजी श्रीअंगको प्रसादी उपरना पूरनमलकों उढ़ाये. पाछें द्रव्य बहोत बच्यो. सो पूरनमलने श्रीआचार्यजीकी भेट कियो.

भावप्रकाश: सो पूरनमलको मनोरथ यातें भयो जो पूरनमलकों लीलामें नाम 'चित्रलेखा' सखी, याते अपने स्वरूपको ज्ञान भयो. तब श्रीआचार्यजीकों प्रसन्न जानि मनमें विचार कियो जो में मन्दिर संवरायो सो सेवा तो लीलाहूमें मिलत हें. कुंज संवारिवेकी परन्तु श्रीआचार्यजी मुख्य श्रीस्वामिनीरूप हें. तिनकी कृपातें कछु श्रीअंगकी सेवा करि लेउं, यह विचारी, अरगजा लेपनकी सेवा श्रीस्वामिनीजी अपने हाथसों प्रभुकों समर्पत हें, संयोग समय. ओर विप्रयोग समय ललिताजी श्रीठाकुरजीकों समर्पत हें. काहेंतें? अरगजा श्रीस्वामिनीजीके श्रीअंगके भावसों हे सो श्रीस्वामिनीजीकी कृपा बिना यह सेवा कहां मिले? सो श्रीआचार्यजीकी प्रसन्नतासों पूरनमलको मनोरथ सिद्ध भयो. सो श्रीआचार्यजी प्रसादी उपरेना अपनो उढ़ाये तामें सगरो सरीर पूरनमलको अलौकिक मानसी सेवा योग्य ह्वै गयो. तातें पूरनमलको भगवत्सेवा नाहिं पधराई. मानसीमें मगन भये. मन्दिर संवराये तामें वित्तजा सेवा सिद्ध भई. यामें यह जताये जो भाव करिकें एकही सेवामें फल भयो. एक दिन अरगजा लगाये तन करि धन करि मन्दिर संवराये. तातें भाव बिना जन्म भरि तनुजा-वित्तजा सेवा करत हें परन्तु मानसी फलरूप पावत नाहिं. सो प्रीतिसों एकही बारमें फल पाये. तातें प्रीति सर्वोपरि फलकों सिद्ध

करत हे. यह जताये.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.२४।प्र.१)

(२२)

तब गोपालदास मनमें विचारें जो श्रीआचार्यजीकी सेवकनी तो कराउं. जो उत्तम जीव होइगो तो आपुहि सब धर्म सिद्ध होइगो. तब गाड़ीपर स्त्रीकों चढ़ाय बांसबाड़ासों चले सो कछु दिनमें प्रयाग आये. पाछें अडेलमें आय श्रीआचार्यजीसों दंडौत करि विनती किये, "महाराज! मेरे माता-पिता तो सेवक न भये, मैं बहोत कही. ये स्त्रीकों संग ल्यायो हूँ, सो नाम-निवेदन कराय कृपा करिये". तब श्रीआचार्यजी कहें:—

यह तेरी स्त्री पुष्टिजीव नाहिं हे तातें निवेदन मति करावें. यासों न बनेगो, यह जहां-तहां खायगी. ओर नाम सुनाइ देहिंगें. तेरे सम्बन्धसों तेरे माता, पिता, स्त्री को उद्धार होयगो—लीलासम्बन्ध न होइगो".

...तब गोपालदास कछुक दिन श्रीआचार्यजीके पास रहिकै पाछें बिदा होई बांसबाड़ा अपने घर आये, भगवत्सेवा करन लागे.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.२८। भा.प्र.१)

(२३)

एक समय श्रीआचार्यजी गुजरात पधारे. सो पुरुषोत्तम जोसी मध्याह्न समय एक तलावपर सन्ध्या करत हते. तब श्रीआचार्यजी तलावपर पधारिके सन्ध्यावन्दन करन लागें. सो पुरुषोत्तम जोसीकी ओर कृपा करिकें दैवी जानि देखें. तब पुरुषोत्तम जोसी श्रीआचार्यजी पास आई नमस्कार करि पूछ्यो, "महाराज! कर्ममारग बड़ो के ज्ञानमारग बड़ो? तब श्रीआचार्यजी कहें:—

जाके मनमें दृढ़ जो मारग आवें, जामें जाको विश्वास होय वाके भाये तो वह मारग बड़ो. ओर बड़ो तो भक्तिमारग हे जामें जीव कृतार्थ होई. ओर ज्ञानमारग कर्ममारग सों कृतार्थ कठिनतासों होई. सो काहूसों निर्वाह होय नाहिं. काहेतें? कष्टसाध्य हें. सो या कालमें सरीरको कष्ट कर्यो न जाई. जो कोउ सरीरको कष्ट सहे तो मन ठिकाने न रहें. तातें भक्तिमारगी जीव कृतार्थ होई. ओर आश्रय नाहिं.

तब पुरुषोत्तम जोसीने कही जो ''महाराज! भक्तिको स्वरूप कहा? कृपा करिकें कहिये''. तब श्रीआचार्यजी कहें, ''भक्तिको स्वरूप वर्णन करिये तो पार आवें नाहिं परन्तु कछुक तोकों कहत हों. तब 'भक्तिवर्द्धिनी' ग्रन्थ करि ग्यारह श्लोक पुरुषोत्तम जोसीकों सुनाये. सो यह उत्तम अधिकारी हे तातें सगरो बोध ह्वै गयो. तब श्रीआचार्यजीकों दंडौत करि विनती किये, ''महाराज! इतने दिन हम कर्ममार्गमें पचि मरे परन्तु कछु हाथ आयो नाहिं. वृथा जन्म गमाये. अब आपु हमकों सरनि लीजिये. आज्ञा करो सो हम करें''. तब श्रीआचार्यजी दृढ़ प्रीति देखिकें नाम सुनाइ ब्रह्मसम्बन्ध कराये. ओर माथेपर चरन धरे. हृदयपर चरन धरे. ओर कहे जो ''तोंकों भक्तिमारग स्फुरेगो. दृढ़ एकांगी भक्तिको तू अधिकारी हे''. तब पुरुषोत्तम जोसीनें विनती करी जो ''महाराज! मेरे घर पधारो, स्त्रीकों अंगीकार करो''. तब श्रीआचार्यजी पुरुषोत्तम जोसीके घर पधारि स्त्रीकों नामनिवेदन कराये. पाछें आज्ञा दिये जो ''तुम भगवत्सेवा करो''. तब पुरुषोत्तम जोसीने कही, ''महाराज! मेरे घरमें श्रीठाकुरजी हें, सो मर्यादाकी रीति पूजा करत हतो.

अब आपु जेसे आज्ञा करो तेसे सेवा करों''. तब श्रीआचार्यजी लालजीकों पञ्चामृतस्नान कराय पाट बैठाये पुरुषोत्तम जोसीके माथे पधराये. मा-बाप तो पहले ही देह छोड़ी हती. सो दोऊ जनें प्रीतिसों सेवा करन लागें. पाछें श्रीआचार्यजी श्रीद्वारिका पधारे. सो पुरुषोत्तम जोसीनें बहोत दिन सेवा करी. भगवद्भावमें मगन रहते, अव्यावृत्त होइ रहें. काहूके आगें अपने हृदयको भाव प्रगट न करते.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.३०। भा.प्र.१)

(२४)

जगन्नाथ जोसी श्रीठाकुरजीकों ताती खीर भोग धरे. तेसे श्रीठाकुरजी ताती खीर अरोगते. सो कितनेक दिनकों श्रीआचार्यजी खेरालु गाममें जगन्नाथ जोसीके घर पधारे. सो श्रीठाकुरजीके ओष्ठ ओर जीभ बहोत राती देखे. तब श्रीआचार्यजी श्रीठाकुरजीसों पूछें, ''बाबा! जीभ, ओष्ठ बहुत राते क्यों हें?'' तब श्रीठाकुरजीने कही जो ''जगन्नाथ जोसी ताती खीर भोग धरत हे. तातें मैं अरोगत हों.'' तब श्रीआचार्यजी जगन्नाथ जोसीसों कहें जो ''तू ताती खीर श्रीठाकुरजीकों भोग क्यों धरत हे?'' तब जगन्नाथ जोसी कहें, ''महाराज! हम यह जाने जो ''ताती सामग्री अरोगत हें तातें समर्पत हों''. तब श्रीआचार्यजी कहें:—

खीर बहोत ताती न समर्पिये. अंगुरी डारि देखिये. अंगुरी सहे तब भोग धरिये. ओर सामग्री ताती धरिये ताकी चिंता नाहिं

तबतें जगन्नाथ जोसी सीरी करिकें खीर धरन लागें.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.३१। प्र.२)

श्रीआचार्यजी राना व्याससों कहें जो ''जा गंगाजीमें न्हाइ आव''. तब राना व्यास गंगाजीमें न्हाइ आये. तब श्रीआचार्यजी नाम सुनाइ ब्रह्मसम्बन्ध कराये ओर आज्ञा दिये, ''अब जहां पंडितनूसों हारे हो तहां-तहां जाईके सगरे वाद करिके जीति आवोगे''. पाछे राना व्यास रसोई करि भोग धरिकें महाप्रसाद लिये. मनमें आनन्द भयो. पाछें प्रातःकाल न्हाइके श्रीआचार्यजीकों दंडौत कियो. तब श्रीआचार्यजी चतुःश्लोकी सिखाय कहें जो ''जा, पंडितनूसों वाद करि आव''. सो सगरे पंडितनकों एक ही वचनमें जीते. श्रीआचार्यजीके प्रमेयबलप्रतापतें. पाछें तीसरे प्रहर आय श्रीआचार्यजीकों दंडौत करि बिनती कियो. तब श्रीआचार्यजी कहें:—

पण्डित तो जीते परन्तु अहंकार मति करियो. अहंकार जा वस्तुको कर्यो सोई वस्तुको नास होइगो.

तब राना व्यासने बिनती करी, ''महाराज! अब अहंकार न करूंगो. अहंकार करि बहोत दुःख पायो. अब ऐसी कृपा करो जो कछु भगवद्-अनुग्रह होई. मेरो जनम ऐसोई बीत्यो भटकतें. तब श्रीआचार्यजी कहें, ''कहूंतें भगवत्स्वरूप ले आवो''. तब राना व्यास बजारमें जाई एक लालजीको स्वरूप न्योछावर देकें ले आये. तब श्रीआचार्यजी पञ्चामृतस्नान कराइ राना व्यासके माथें पधराई कहें, ''अब तू बहोत भटक्यो परन्तु अब घरमें जाई मन लगाईकें भगवत्सेवा करो''. तब राना व्यास श्रीआचार्यजीकों दंडौत करि बिदा होई अपने घर आये. पाछें सेवा करन लागें.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.३२। भा.प्र.१)

भावप्रकाश : तब श्रीआचार्यजी कहें, ''गंगाजी स्नानकों चलेंगे तहां तुमको नाम सुनावेंगे''. पाछें आप गंगाजी पधारे, गोविंद दूबेकों गंगाजी स्नान कराई नाम निवेदन कराए. तब गोविंद दूबे कहें, ''अब मोकों कहा आज्ञा हे?'' तब श्रीआचार्यजीने कही, ''भगवत्सेवा करो''. तब गोविंद दूबेने श्रीआचार्यजीसों बिनती करी, ''महाराज! मेरे पिताके ठाकुरजी हें, सो हमारी ज्ञातिके ब्राह्मनके घर हें. सो उनकी सेवा कैसे करों?'' तब श्रीआचार्यजीने आज्ञा दीनी जो ''अपने घरमें ठाकुरकों लाई पञ्चामृतस्नान कराई भगवत्सेवा करियो''. तब गोविन्द दूबे श्रीआचार्यजीसों विदा होयके कछुक दिनमें घर आये. सो वह ब्राह्मनसों ठाकुरजी ले अपने घर पञ्चामृतस्नान कराई सेवा करन लागे परन्तु भगवत्सेवामें मन लागे नाहिं, चित्तमें उद्वेग रहे. ओर श्रीआचार्यजीने यह आज्ञा दीनी जो ''श्रीठाकुरजीकों तू पञ्चामृत न्हवाई लीजो'', सों यातें जो गोविंद दूबे व्रजलीलासम्बन्धी नाहिं हे. द्वारिकाकी राजलीलासम्बन्धी सत्यभामाकी सखी हे. तहां इनकी प्राप्ति हे. तातें आप पञ्चामृतस्नान नाहिं कराये.

सो गोविंद दूबे घरमें सेवा करें, परन्तु मनमें बहोत विग्रह रहे. सो सेवामें चित्त लागे नाहिं. तब गोविंद दूबे एक पत्र श्रीआचार्यजीकों लिखे, ''महाराज! मेरे मनमें बहोत विग्रह रहत हे. भगवत्सेवामें चित्त लागत नाहिं. सो मैं कहा करूं?'' सो पत्र श्रीआचार्यजी पास आयो, सो आपु बांचिके, 'नवरत्न' ग्रन्थ करि लिखि पठाये ओर लिखें:—

यह 'नवरत्न' ग्रन्थके पाठ कियेतें तेरे मनकी विग्रहता मिटि जायगी''

सो पत्र श्रीआचार्यजीको गोविंद दूबेके पास आयो. तब गोविंद दूबे प्रसन्न होइकें 'नवरत्न' ग्रन्थको पाठ करन लागे. सो

पाठ करत श्रीआचार्यजीकी कृपातें मनकी व्यग्रता चिंता सब मिटि गई. मन भगवत्सेवा करनमें लागे.

भावप्रकाश: सो गोविंद दूबेके मनमें विग्रहता भई, ताको अभिप्राय यह जो गोविन्द दूबे जीव तो द्वारिकालीलासम्बन्धी ओर सेवा भावना व्रजकी करे, सो मन लागे नाहिं. न राजलीलामें दृढ़ता होई, न व्रजलीलामें. सो अनेक साधनमें मन दौरे जो "तीर्थ करूं के व्रत कोई करूं, कोई जप करूं?" इत्यादि मन भटके. सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु 'नवरत्न' ग्रन्थ लिखि पठाये, **"तू चिंता मति करे. चित्तकी उद्वेगता हे, यह प्रभुकी लीला जानि, श्रीठाकुरमेंतें मन ओर ठौर जाय सोउ भगवदइच्छा मानि, चिन्ता मति करियो. जितनी बने तितनी सेवा करियो"**. तब गोविंद दूबेको मन स्थिर ह्वे गयो. जहां मन लौकिक वैदिक में जाइ तो भगवदइच्छा माने. श्रीरनछोड़जीमें मन बहोत जाई सो भगवदइच्छा मानें. उहांकी लीलामें मग्न रहे. काहेतें? शास्त्रपुराण अनेक उपाई प्रभुमिलनके कहे हें. जीवकों मिस मात्र मार्ग दिखाये जो जहांको अधिकारी हे वामें वाको मन स्वतःसिद्ध लागत हे. तातें जेसे मनुष्य, गेल चलिवेवारेकों दस गामके मार्ग बतावे परन्तु जाकों जा गाम जानों होई सोई गाम जात हे. तेसे ही कोई भगवदीयद्वारा, कोई गुरुद्वारा, कोई ईश्वरद्वारा, जैसो अधिकारी तैसो संग पाये, उही मार्गमें भाव वाको दृढ़ होत हे. सो गोविंद दूबेको श्रीरनछोड़जीमें दृढ़ भयो जो आगे वरनन करत हें.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.३४।प्र.१)

(२७)

राजा दूबे—माधो दूबे दोऊ भाई एक सांचोराके घर जन्में. सो इनको पिता बहोत साधू हतो. मर्यादामार्गकी रीतिसों श्रीठाकुरजीकी पूजा करतो. सो इनके घर साधू संत वैरागी भूखौ जाई निकसे तो तिनकों भूखे जान न देतो. प्रीतिसों राखतो. एकादसीको जागरन सदा करतो. सो राजा दूबे, माधो दूबे के माता-पिता मांदे भये.

तब दोऊ बेटानूसों कहें, "हमकों या समें श्रीरनछोड़जीके दरसन करावो तो बहोत आछो". तब राजा दूबे—माधो दूबे, वे दोऊ डोली भाड़े करि माता-पिताकों बैठारि, श्रीठाकुरजीकों संग ले चलें. सो श्रीरनछोड़जीके दरसन माता-पिताकों कराये. तब तहां कछुक दिनतें श्रीआचार्यजी द्वारिकामें हते. सो उहां माता-पिताकी देह छूटी. सो राजा दूबे—माधो दूबे, संस्कार किये, सो सूतक लाग्यो. सो डेरापर बेठे रहते. तब राजा दूबे—माधो दूबे, लोगनूसों पूछे, इहां कहूँ कथा-वार्ता भगवत्चर्चा होत होई तो तहां जैये. सूतकके दिन कटत नाहिं. तब एकने कही, "श्रीवल्लभाचार्यजी पृथ्वी परिक्रमा करि इहां पधारे हें, सो कथा बहोत सुन्दर कहत हें"... पाछें सबेरे उठिकें दोऊ भाई आपुसमें बतराये जो "अब आपुन कृतार्थ भये. श्रीआचार्यजी साक्षात् पुरुषोत्तम हें जो एक दिनकी कथामें लीलारसको अनुभव कराये". पाछें याही भांति सूतकके दिन नीठि-नीठि बिताये. ग्यारमें दिन न्हाइके सुद्ध होई, श्रीआचार्यजीके पास बड़े सबेरे आई बिनती किये, "महाराज! हमको सरनि लीजिये". तब श्रीआचार्यजी दोऊ भाईनूकों फेरि न्हवाईके नाम सुनाए, ब्रह्मसम्बन्ध कराए. पाछें श्रीआचार्यजी कहें, "अब तुम भगवत्सेवा करो. तब राजा दूबे—माधो दूबे कहें महाराज! हमारे पिताके ठाकुर हमारे पास हें. पिता-माता पूजामार्गकी रीतिसों करते, सो इहां आय देह छोड़ी. हमपर आपकी कृपा भई. जा प्रकार आज्ञा करो, ता प्रकार सेवा करें. तब श्रीआचार्यजी कहें, "जाऊ डेरातें श्रीठाकुरजी ले आवो". तब माधो दूबे जाइके ठाकुरकी झांपी ले आए. सो श्रीआचार्यजी श्रीठाकुरजीकों पञ्चामृतस्नान कराई राजा दूबे—माधो दूबेके माथे पधराए ओर आज्ञा किये:—

सब ठोरतें मन छुड़ाई निरोध करि भगवत्सेवा

करियो''

तब राजा दूबे माधो दूबे बिनती करी जो ''महाराज! निरोधको स्वरूप कहा हे?'' तब श्रीआचार्यजी कहें:—

निरोध दोई प्रकारको : एक साधनदसाको, एक सिद्धदसाको.

साधनदसाके निरोधके लक्षन यह जो संसार-लौकिक-वैदिक मनमें सुहाय नाहिं. यही मनमें रहे जो कब भगवत्सेवा करूं? कब कथावार्ता करूं? यामें रुचि उपजे. मन कछु लौकिकमें जाय तो, फेरि खेंचि सेवामें लगावे. यह जानें जो एक भगवानहीके आश्रयतें सब कार्य सिद्ध होत हें. यह साधनदसाको निरोध.

ओर फलदसाको निरोध यह जो मनको स्वतः ही सिद्ध यही सुभाव परे जो श्रीठाकुरजीके स्वरूपके ध्यान बिना ओर ठोर जाय नाहिं. लौकिक वैदिक कार्य हू करे परन्तु मन श्रीठाकुरजी बिना ओर ठौर जाय नाहिं. यह फलदसाको निरोध. तिनकों यह संसारको दुःख-सुख अनेक ताप हें सो लगे नाहिं. मन श्रीठाकुरजी ओर उनके लीलारस में मग्न रहे.

यह निरोधको प्रकार हे.

तब राजा दूबे—माधो दूबे विनती किये, ''महाराजाधिराज! हमकों तो दोई प्रकारको निरोध दुर्लभ हें. तातें जेसे आपु हमकों

संसार समुद्रमेंते डूबते बांहि पकरि के सरनि लिये हें, याही प्रकार निरोधको दान आपु करोगे तो हमकों कछु सिद्ध होइगो ओर प्रकार हमारो तो सामर्थ नाहिं हें''. या प्रकार दोऊ भाईकी दीनता, सरल स्वभाव, देखिके, दशमस्कन्ध (जाकों) निरोधस्कन्ध कहें हें, ताको आपु 'निरोधलक्षन' ग्रन्थ करि, दोऊ भाईनूकों पाठ करायकें कहें, तुम दोऊ भाईनूकों निरोध सिद्ध होईगो. यह कहि अपनो चरणामृत दोऊ भाईनूकों दिये. सो तत्काल दोऊ भाईको मन अलौकिक व्हे गयो. लीलारसको अनुभव होंन लग्यो. तब श्रीआचार्यजी कहें:—

अब अपने घर जाय सेवा करो. जाकों निरोध भयो वाकों, बहुत बोलनो, देस फिरनो नाहिं. तातें घर जाऊ, दैवी जीव आवें तिनकों नाम दीजो. तुमकों तो निरोध सिद्ध भयो; ओर, जो तुम्हारो संग मन लगायके करेगो, ताहूकों निरोध सिद्ध होइगो''.

तब राजा दूबे—माधो दूबे पास द्रव्य हतो सो श्रीआचार्यजीकी भेट करि बिदा होई, द्वारिकातें चले सो अपने गाम मणुंदमें आए. घरमें आइ दोई भाई भगवत्सेवा करन लागे. कछुक द्रव्य घरमें हतो तामें निर्वाह करें. काहूसों बहोत बोले नाहिं.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.३५। भा.प्र.१)

(२८)

एक समें श्रीआचार्यजी अडेलमें बिराजत हते. सो एक दिन भंडारीनें श्रीआचार्यजीसों कही, महाराज! आज भंडारमें सीधो-सामान कछु नाहिं हे. तब श्रीआचार्यजी एक सोनेकी कटोरी श्रीठाकुरजीके

मन्दिरमेंतें लाइ दिये ओर कहें, "आजुके लायक राजभोगपर्यन्तकी सामग्री ले आवो, अधिकी मति लाइयो. यह बनियाके यहां कटोरी गहनें धरि आइयो". तब भंडारी सोनेकी कटोरी ले बनियाके इहां धरि राजभोगकी सामग्री सब लायो. पाछें सामग्री करि श्रीठाकुरजीकों भोग धरि समयानुसार भोग सराय आरती करि अनोसर कराये. महाप्रसाद श्रीयमुनाजीमें पधराई दियो ओर बाकी गायनकों खवाइ दियो. आप परिकर सगरे सेवक सहित भूखे ही बैठे रहे.

भावप्रकाश: सो यह वैष्णवको सिक्षा दिये जो श्रीठाकुरजीकी वस्तु होई सो वैष्णवको लेनो नाहिं, ठाकुरजी अरोगे. यह रीति सबकों सिखाये.

ओर यहां सिंहनदके सगरे वैष्णव मिलिकें श्रीआचार्यजीकी भेटकी मोहौर तीस हती सो वासुदेवदास छकड़ाकों दीनी जो ये श्रीआचार्यजीकों पहोंचती होई तो आछो. तब वासुदेवदास वैरागीको भेष धरि, सगरी मोहोरनूकों लाखके गोला सालिग्राम जेसे करि, चंदन चढावत चले... मार्गमें चोर ठग मिले सो जाने जो वैरागी हे, सालिग्राम पूजत जात हे... पाछे आगरेसों चले सो दोई दिन चबेनासों काम चलाये. तीसरे दिन, तीसरे प्रहर, जा दिन श्रीआचार्यजी भूखे बैठे रहें, ता दिन अडेल आये. सो गाम बाहिर आई लाखको गोला फोरि, मोहोर काढि आये, श्रीआचार्यजी महाप्रभुनकों दिये. मोहोर तीस आगे धरी. महाप्रभुनसों बिनती किये, "महाराज! सिंहनदके वैष्णवनूकी भेट हें". तब श्रीआचार्यजी कहें, "वासुदेवदास! इतनी मोहौर तू कैसे लायो? मार्गमें चोर ठग बहोत हें". तब वासुदेवदासने कही, "महाराज! यह बात तो मैं न कहूंगो, आपु खीजोगे सुनिके". तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहें, "हम तेरे उपर प्रसन्न होइंगे, न खीजेंगे. जेसे लायो सो कहि दे". तब वासुदेवदासने सब प्रकार कह्यो जो "लाखको

गोला करि, चंदन चढ़ावत आयो". तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहे :—

"ऐसे न करिये. भगवत्स्वरूपको आकार करि पाछें अन्यथा करनो पड़े".

तब वासुदेवदासने कही :—

"महाराज! कछु प्रतिष्ठा करी न हती. लाखको गोला बांध्यो हतो".

तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहें :—

"तऊ ऐसे न करिये".

पाछें भंडारीकों बुलाय तीस मोहौर श्रीआचार्यजी महाप्रभु दिये ओर कहें, "मंगलातें ले सैन पर्यंतकी सामग्री ले, कटोरी छुड़ाइ ले आवो". पाछें श्रीआचार्यजी महाप्रभु सैनपर्यंत पहोंचि श्रीठाकुरजीकों अनोसर कराय आप भोजन किये. ता पाछें श्रीअक्काजी आदि सगरे परिकर भोजन किये.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.३८। प्र.१)

(२९)

...तब श्रीनवनीतप्रियाजीकों स्नान कराय सिंगार करिकें राजभोग सिद्ध करिकें भोग समर्पे... जब आप गादी-तकियानूके उपर बिराजे तब एक वैष्णवनें शंका कीनी जो "महाराज! कालि आपुनें राजभोगतांइको सब प्रसाद गौअनूकों खवायो ओर श्रीयमुनाजीमें पधरायो ताको कारन कहा?

तब आप कहें जो :—

''कटोरी धरिकें सामग्री आई सो तो भोग श्रीठाकुरजी आपहीके द्रव्यको आरोगे सो तो आपहीको भयो. जो श्रीठाकुरजीको द्रव्य खायगो सो मेरो नाहिं ओर मेरो सेवक भगवदीय होयगो सो देवद्रव्य कबहुं न खायगो. जो खायगो सो महापतित होयगो. तातें वा प्रसादमेंतें भोजन करिवेको अपनों अधिकार न हतो. वाके लिये गौअनकों खवायो ओर श्रीयमुनाजीमें पधरायो.

(घरुवार्ता : ३)

(३०)

भावप्रकाश : श्रीआचार्यजी कासीतें अडेल पधारत हते. सो इह गाममें आइ कल्याणरायजीके मन्दिर पास एक आमके वृक्षके नीचे बिराजे. ता समें बाबावेनु ओर कृष्णदास, पास गाम हतो तहां गये हते. तब मन्दिरमेंतें श्रीकल्याणरायजी आचार्यजीकों पुकार्यो जो ''आपु भीतर पधारो''. तब श्रीआचार्यजी मन्दिरके भीतर जायके देखें लेहंगा-लुगरा पहरे हें. तब श्रीआचार्यजी पूछे, ''देवीकी नांई क्यों बैठे हो?'' तब श्रीठाकुरजीने कही, ''कहा करूं? या गाममें ठाकुरजीकों कोई जानत नाहिं. ओर बाबावेनु, कृष्णदास, यादवेन्द्रदास दैवी जीव हें. तिनके उद्धार करनार्थ मैं देवी होई बाबावेनुसों पूजा कराई हे. काहेंते, बाबावेनु देवीको उपासक हे. सो अब आपु मोकों श्रीठाकुरजीको स्वरूप करो. इहां चार घड़ी आपु बिराजो. बाबावेनु, कृष्णदास, यादवेन्द्रदास खवास कों अंगीकार करि पाछें पधारो''. तब श्रीआचार्यजी लेहंगा-लुगरा उतारि, लेहंगा एक खूंटीपर धरि दिये ओर लुगराकों फारि एक परदनी पहराई, पाग बांधि दिये. पाछे आपु आमके वृक्षके नीचे जाई बिराजे. इतनेहीमें बाबावेनु ओर कृष्णदास ओर यादवेन्द्रदास खवास तीनों आये.

सो श्रीकल्याणरायजीके मन्दिरमें जाय देखे तो पाग धोती पहरे बैठे हें. तब बाबवेनु कही, ''इहां कौन आयो जो मेरी देवीके कपरा उतारे?'' तब कल्याणरायजीने कही, ''मोकों छूवो मति. मैं तो कल्याणरायजी ठाकुर हूं''. तब बाबावेनुने कही, ''ठाकुरकों तो या गाममें कोऊ मानत नाहिं ओर मेरो अपराध कहा जो छुइवेकी नाहिं करत हों?'' तब श्रीकल्याणरायजीने कही, ''आमके वृक्षके नीचे श्रीआचार्यजी बिराजे हें. तिनको तू सेवक व्हे आव; ओर, गामके लोग ठाकुरकों नाहिं मानत तो तेरे हमारे गामके लोगनसूं कहा काम हे? तेरे घरमें सातसें रुपैया नीचे कोठामें गड़े हें, सो निकासिके मेरी सेवा पूजा करियो. परन्तु अब तुम जाई श्रीआचार्यजीके सेवक ह्वे आवो''. तब तीनों जने श्रीआचार्यजी पास आयके कहें, ''महाराज! हमको सेवक करिये''. तब श्रीआचार्यजी कहे, ''तीनों जने तलाबमें न्हाई आवो''. तब तीनों जने तलाबमें न्हाइके श्रीआचार्यजी पास आये. तब श्रीआचार्यजी तीनोंनकों नाम सुनाय निवेदन कराये. पाछें श्रीआचार्यजी कहे, बाबावेनुसों :—

अब तुम एक काम करो. श्रीकल्याणरायजीकों अपने घर ले जाई गोप्य रीतिसों सेवा करो. जो कोई गामके जाने नाहिं ओर यह श्रीकल्याणरायजीके मन्दिरमें कोई देवीकों बैठारि काहूकों राखि देऊ. सो पूजा चलावेगो. तुम कछु देवीकी पूजाको मति लीजो. जो श्रीठाकुरजीकों भोग धरियो सो तीनों जने लीजो.

तब बाबावेनुने कही, ''महाराज! आपु मेरे घर पधारिके दोई दिन रहि, जेसे सेवाकी रीति होय तेसे आप कृपा करि बताय देउ, या गाममें कोई जानत नाहिं''. तब श्रीआचार्यजी कल्याणरायजीकों पधराय बाबावेनुके घर पधारे. तहां बाबावेनुके घरमें नीचेके कोठामें सातसैं रुपैया निकसे. सो लायकैं श्रीआचार्यजीके

आगे धरे. तब श्रीआचार्यजी कहें, ''यह हमारे कामके नाहिं, यह तुमकों दिये हें. ओर तेरो दृढ़ विश्वास ठाकुरजीमें होई तातें दिये, तुम राखो''. पाछें श्रीआचार्यजी चार दिन तांई रहि, श्रीकल्याणरायजीकों पञ्चामृतस्नान कराई, बाबावेनु ओर कृष्णदास के माथे पधराय, सगरी पुष्टिमार्गकी सेवारीति बताये; ओर, आज्ञा दिये, ''श्रीठाकुरजी तुमकों आज्ञा दें सो करियो''. या प्रकार समुझाय आपु अडेल पधारे.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.३९। भा.प्र.१)

(३१)

भावप्रकाश : ये जगतानन्द थानेश्वरमें एक ब्राह्मणके घर जनमें. सो वर्ष बारहके भये, तब कासीमें जाय विद्या पढ़े. वर्ष बारह कासीमें रहि विद्या श्रीभागवत पढ़ी. पाछें थानेश्वरमें आइ सरस्वती नदीके ऊपर श्रीभागवतकी कथा कहते, तामें इनकी जीविका निर्वाहलायक चली जाती.

तब जगतानन्दने बिनती करी, ''महाराज! हमकों सेवक करो''. तब श्रीआचार्यजी आज्ञा करें जो ''जाऊ न्हाई आउ''. तब जगतानन्द सरस्वतीमें न्हाई अपरसमें आयो. तब श्रीआचार्यजीने नाम सुनाय ब्रह्मसम्बन्ध करायो. पाछें जगतानन्दके घर पधारे. तब जगतानन्दसों कहें, ''तुम भगवत्सेवा करो. पाछें रात्रिकों श्रीआचार्यजी यह श्लोक कहे :—

''पठनीयं प्रयत्नेन सर्वहेतुविवर्जितम्।।
वृत्त्यर्थं नैव युञ्जीत प्राणैः कण्ठगतैरपि।।''

सो जगतानन्दने सुनत ही जलतें संकल्प कियो जो :—

''आजु पाछें वृत्त्यर्थ श्रीभागवत न कहूंगो ओर शास्त्र कहूंगो''.

तब श्रीआचार्यजी कहें :—

''श्रीभागवत कहि जीविका कबहू न करनो, प्रान जाई तो सुखेन जाऊ.''

या प्रकार जगतानन्दके घर रहि, पुष्टिमारगकी रीति सेवाकी सिखाई, आप पृथ्वीपरिक्रमाकों पधारे. तब जगतानन्द मन लगाईके भगवत्सेवा करन लागे. ओर पुरानकी कथा आदि महाभारत कहते तासों जीविका करते. सो भगवत्सेवा करत कछुक दिनमें श्रीठाकुरजी सानुभाव जतावन लागे.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.४०। प्र.१)

(३२)

तब दोऊ भाई (आनन्ददास-विश्वम्भरदास) बिनती किये, **''महाराज! हमारो मन तो संन्यास लेनको हे परन्तु ओर ठौर मन जात नाहिं. सो हमारो मन ठिकानें रहे, त्यागदशा छूटे, घरमें रह्यो जाई, तब भगवत्सेवा बने''.** तब **श्रीआचार्यजी चरणामृत दिये ओर 'संन्यासनिर्णय' ग्रन्थ करि दोऊ भाईन्कों सुनाये. तब रस उछलित हतो, सो हृदयमें भगवद्रस स्थिर भयो. मनको उद्वेग मिटि गयो. तब श्रीआचार्यजी वस्त्र प्रसादी श्रीनवनीतप्रियजीके दिये ओर कहें, ''तुम इनको पधराई सेवा करियो, घरमें जाई. तिहारो मन सदा श्रीठाकुरजीकी लीलामें रहेगो. लौकिक-वैदिक तुमकों बाधक कछु न होइगो''.** तब दोऊ भाई श्रीआचार्यजीकों दंडौत करि बिदा होई घरमें आये.

माता-पिता रोवन लागे, "बेटा! दोई दिनतें तुम आये नाहिं. कहां खान-पान कियो होयगो? हम जहां तांई जीवे तहां ताई एक बार हमकों दिखाई दे जायो करो". तब दोऊ भाईने कही, "हमकों एक ठौर करि देऊ तो हम घरहीमें रहि जाई". तब माता-पिताने कही जो यह सगरी जगह तिहारी हे, जहां चाहो तहां रहो". तब दोऊ भाईने कही जो "नाहिं, न्यारी करि देऊ. तिहारे जगेमें हम न आवें. हम रहें तहां तुम मति आवो, तो हम घरमें रहें". तब एक अलग जगह बताये सो दोऊ भाई खासा करि श्रीठाकुरजीकों पधराये, मिलके रसोई करि भोग धरि महाप्रसाद लेंही. पाछें भगवद्वार्ता करें. मगन होई जांय. संन्यासनिर्णयको भाव, लीलाको हू, विचार करि रात्रि-दिन भगवद्रसमें मगन रहें. ओर माता-पिता बहोत सुख पाये जो पुत्र घरमें हें, न मिले तो कहा भयो?

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.४१। भा.प्र.)

(३३)

सो वह ब्राह्मनी निष्कपट भोली बहोत हती ओर निष्कञ्चन, द्रव्य नाहिं. सो माटीके कुंजा श्रीठाकुरजी आगे भरिके राखे. रसोईमें हू माटीके पात्र; ओर, घर हू निपट छोटो. वही घरमें रसोई, मन्दिर, श्रीठाकुरजीकों सामग्री. आचार क्रिया हू बहोत समझे नाहिं ओर नेत्रनूसों हू थोरो दीसे. सो प्रीतिपूर्वक सेवा करे. तातें श्रीआचार्यजी, श्रीठाकुरजी प्रसन्न रहें. यजमानके यहांतें कछु आवे, तामें निर्वाह करे. सो वैष्णव सब आपुसमें चर्चा करन लागें जो "यह ब्राह्मनीके माथें श्रीआचार्यजीने भगवत्सेवा क्यों पधराई हे?" यह कछु आचार समुझत नाहिं, कछु द्रव्य नाहिं. सो हमारे माथे पधरावें तो हम भलीभांति सेवा करें". या प्रकार आपुसमें चर्चा करें परन्तु श्रीआचार्यजीसों कहि न सके.

पाछे एक दिन एक वैष्णवनें श्रीआचार्यजीसों विनती करी, "महाराज! वह ब्राह्मनीके द्रव्यको संकोच बहोत हे ओर आचार क्रियामें समुझत नाहिं, नेत्रनसों बहोत सूझत नाहिं. श्रीठाकुरजी काहू ओर वैष्णवके माथे पधराई देउ तो सेवा भलीभांतिसों होइ". तब श्रीआचार्यजीने कही :—

आचार, क्रिया, द्रव्य सों श्रीठाकुरजी प्रसन्न नाहिं. श्रीठाकुरजीमें प्रीति चहिये, सो उह ब्राह्मनीकी परम प्रीति हे. जेसे उह ब्राह्मनी करत हे तेसेही श्रीठाकुरजी मानि लेत हें... श्रीठाकुरजी स्नेहके भूखे हें, उह ब्राह्मनीके ऊपर प्रसन्न हें."

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.४२। प्र.१)

(३४)

पाछें एक समें श्रीआचार्यजी थानेश्वर पधारे सो रात्रिकों रामानन्दके घर रहे. सो पिछली रात्रिकों रामानन्दनें उठिकें स्त्रीसों कही "बेगिके गोबर संकेलि नांतर वैष्णव उठिके सब गोबर ले जाइंगे". सो यह बात रामानन्दकी श्रीआचार्यजीने सुनी सो आप उठिके मनमें बहोत क्रोध किये जो "या प्रकार गोबरकों कहेत हे उठाई ले जाइंगे! तो वैष्णवको ओर समाधान कहा करेगो? वैष्णव मेरे प्राणप्रिय, तिनकों यह ऐसी बात कही!" तब श्रीआचार्यजी क्रोध करि हाथमें जल लेके, वेदमन्त्र पढ़ि रामानन्दके उपर छिरकीके कहे, "मैने तेरो त्याग कियो". यह कहि वाही समें संगके वैष्णवनुकों साथ लें उहांतें उठि चले.

भावप्रकाश : आप नवरत्नमें कहे हें "निवेदनन्तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः"

यह निवेदनको स्मरण तादृशी वैष्णवसों मिलिके करे तो निवेदनको फल, भाव जाने. सो वैष्णवकों कहें जो "गोबर उठाई ले जाइगें. सो वैष्णव गोबरके चोर ठहराये". तातें श्रीआचार्यजी क्रोधवन्त होइ सगरे वैष्णवकों सिक्षा दिये जो :—

संभारिके बोलिवो. वैष्णवपर प्रीति राखनी.

यह जताये.

...पाछें अनोसर करिके श्रीआचार्यजी मन्दिरतें बाहिर पधारे. तब दामोदरदास हरसानीसों कहे जो "रामानन्द पण्डितके हाथसों श्रीनाथजी जलेबी आरोगे ओर कहे, "मैं कैसे वाकों छोड़ों?" तब दामोदरदासने पूछी जो "महाराज! आप याको त्याग कियो हे ओर श्रीनाथजी पक्ष करी हे; सो, वा जीवकों अंगीकार कब करोगे?" तब श्रीआचार्यजीने कही जो :—

"अब वैष्णवको अपराध न करेगो तो वाकों लक्ष जन्ममें अंगीकार करूंगो".

तब रामानन्द प्रसन्न होईके कह्यो जो "भलो, लक्ष जन्ममें मेरो अंगीकार करनो तो कह्यो". ता पाछें रामानन्दकी बुद्धि सुन्दर भई, वैष्णवके अपराधतें डरपन लाग्यो, पंडिताईको अहंकार हतो तातें अपराध पर्यो, सो दीनता भई. पाछें स्वप्नद्वारा लक्ष जन्म भुगताई कृपा करि श्रीआचार्यजी अंगीकार किये.

भावप्रकाश : श्रीआचार्यजी वैष्णवकों दण्ड देत हें सो सिक्षाकों. निजत्याग नाहिं हें. जेसे माता-पिता पुत्रकों दण्ड देत हे सो सिक्षार्थ ही. पुत्रको बुरो न करेंगे. तेसे ही जाननो जो श्रीआचार्यजीको अन्तःकरणसों त्याग

होइ तो श्रीनाथजी वाके हाथकी सामग्री कबहू न अरोगें. काहेतें? श्रीआचार्यजीके सेवक हें तातें. जेसी इच्छा श्रीआचार्यजीकी होई ताही भांति श्रीनाथजी करें. काहेतें? श्रीआचार्यजी रंच अप्रसन्न होई तो श्रीठाकुरजी वाकों कबहू अंगीकार न करें. तो श्रीआचार्यजी त्याग करें ताके हाथकी सामग्री श्रीगोवर्धनधर कैसे अरोगें? तातें श्रीआचार्यजीके अन्तःकरणको त्याग नाहिं. तातें श्रीआचार्यजी वेदमन्त्रसों जल छिरकिकें त्याग याहीतें किये जो मर्यादारीतिसों त्याग हे. सो लोगनूकों दिखायवेकों. सब जाने जो त्याग हे परन्तु लीलासृष्टिके जाने जो दैवी हे सो तो श्रीआचार्यजीके अंगरूप हें. जेसे अंगको त्याग नाहिं तेसे जीव दैवीको त्याग नाहिं. तातें श्रीनाथजी अरोगें. तातें श्रीआचार्यजी 'अन्तःकरणप्रबोध' में कहे हें :—

"चाण्डाली चेद् राजपत्नी जाता राज्ञा च मानिता।
कदाचिदपमानेऽपि मूलतः का क्षतिर्भवेत्"॥

चांडाली राजपत्नी मानवती जब भई तब अपमान हू होई परन्तु रानीपनो न जाई. मान अपमान तो होत ही हे.

ओर 'नवरत्न' ग्रन्थमें कहें :—

"अज्ञानादथवा ज्ञानात् कृतमात्मनिवेदनम्।
यैः कृष्णसात्कृतप्राणैस्तेषां का परिदेवना॥"

ज्ञान अज्ञान करिके जाको निवेदन भगवान्में भयो, वह श्रीकृष्णको प्रानप्रिय भयो, वाकों परिदेवना दुःख चिन्ता काहेकी?

तातें रामानन्द द्वारा इतनो सिद्धान्त प्रगट करन अर्थ आपु मर्यादारीतिसों त्याग किये. जेसे रासपञ्चाध्याईमें भक्तनूको मान

देखि अन्तरधान भये. सो कहा छोड़ि गये! भक्तनूकों प्रभु छोड़ें ही नाहिं. बाहरतें उनके हृदयमें जाई बैठे. तेसेही सबके देखत त्याग कियो. सो वैष्णवको अपराध ऐसो भारी बताये ओर वैष्णवको बोलनो संभारिके. काहेंतें, आश्रय / अन्याश्रय सब वचनमें हे.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.४९। प्र.१-२)

(३५)

तब भगवानदास (सारस्वत) श्रीआचार्यजीसों पूछें, "महाराज! आपको जल शूद्र लावत हे, बासन मांजत हे, सो मैं ब्राह्मण हू मोसों क्यों नाहिं करावत?" तब श्रीआचार्यजी कहें:—

"हमारे मतमें भगवानकों जो कोई न जाने सो शूद्रतें हू गयो बीत्यो और भगवानकों जो जाने सोई सर्वोपरि ब्राह्मण, इतनो भेद हे. तातें ओरसूं नाहिं करावत.

तब भगवानदासने कही, "महाराज! यह कैसे जानिये, वैष्णव भगवानकों जानत हें?" तब श्रीआचार्यजी कहें, "श्रीठाकुरजी कृपा करें तब जान्यो जाय." तब भगवानदासने कही "कृपा कौन प्रकार करें?" तब श्रीआचार्यजी कहें:—

गुरु प्रसन्न होय तब श्रीठाकुरजी प्रसन्न भये जानिये".

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.५२। भा.प्र.)

(३६)

सो गुजरातमें राजनगरके पास एक गांव हे तहां एक सांचोराके

घर जन्मे सो वर्ष आठके भये तब राजनगरमें एक पण्डित पास पढ़न जाते... तब वह पण्डित श्रीआचार्यजीसूं वाद करन आयो सो वाद करनमें वह पण्डित हार्यो सो आपुनें डेरा गयो. पाछे भगवानदाससों वह पण्डितने कही "मैं कासी जाय फेरि ओर पढ़िके वाद श्रीआचार्यजीसों करूंगो. तू मेरी संग चलि." तब भगवानदासनें वह पण्डितसों कह्यो "मोकों तो श्रीरनछोड़जीके दरसन करने हें. अबहि काल्हि आयो आजु कैसे चलूं? एक महिना तो दरसन करूं." तब पण्डितने कही "मैं तो जात हों फेरि कबहूं मिलेंगे." सो पण्डित तो कासीकों आयो. भगवानदास श्रीआचार्यजीके पास आय दंडौत करि बिनती किये जो "महाराज! वह पण्डित वाद करत निरुत्तर भयो सो लाज पायके कासी उठ गयो. मैं वाके पास पढ़त हो सो अब आप मोकों पढ़ावोगे? तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप कहें "तुम बहोत पढ़िके कहा करोगे?" तब भगवानदासने कही "महाराज! बहोत पढ़्यो होंउ तो बहोत द्रव्य कमाऊं. जहां-तहां पण्डितनूकी सभामें आदर होय. जो कोई चर्चा शास्त्रकी करे तासों वाद करूं. संसारमें पूजा होय." तब श्रीआचार्यजी कहे:—

विद्या पढ़िके दोय फल होत हें : [१]विद्या पढ़े शास्त्र बांचे, तब शास्त्र हें सो सीतल जलरूप दोऊ सुन्दर भीतरके नेत्र हें, सो खुले सब वस्तुनूको ज्ञान होई परन्तु सत्पुरुषको ज्ञान होई सीतल जलवत् शान्त चित्त होय जाय, सुख-दुःखकों भगवदइच्छा जानें, जगतमें जीवमात्रमें भगवद्बुद्धि होय. सो दीनता सन्तोष निर्मलता क्रोधादिकरहित होय, भगवान्के आश्रित होय तो वाको पढ़नो सुफल

हे. याहू लोकमें ओर परलोकमें सुख पावे. ओर [२]ओछो पात्र विद्या पढ़े तब वाको पढ़नो अग्निरूप होय. एक तो काम क्रोध मद मात्सर्य में लपट्यो हतो तापर विद्याको मद ओर बढ़े. सो काहूको जगतमें गिनें नाहिं. रात्र-दिन अहंकाररूपी अग्निमें जर्यो करे. सो यह लोकमें जीव दुःखी रहे — परलोकमें नर्ककों पावें. याते तुम बहोत शास्त्र पढ़ो मति. जो पढ़े सोई बहोत हे. ओर द्रव्यादिक हे सो भाग्यसों मिलत हे. पण्डित बड़े-बड़े राजसी मूर्खन्की चाकरी करत हें. तातें सन्तोष-दया राखें काम क्रोध लोभादिक मोह कों छोड़ि श्रीठाकुरजीको भजन करो. जीविका भगवान् विचारे हें सो भगवदिच्छाते भागि प्रमाण मिली रहेगी.''

या प्रकार सिद्धान्तरूप श्रीआचार्यजीके वचन सुनिके भगवानदास (सांचोरा)के हृदयमें भगवद्धर्म प्रवेस भयो.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.५३। भा.प्र.)

(३७)

तब आचार्यजी आप कहें जो ''दमला! तेनें सवारे वह अजगर देख्यो हो?'' तब वाने कह्यो जो ''महाराज! हां देख्यो हो.'' तब आचार्यजी आप कहें जो :—

वह अजगर पिछले जनममें महन्त हतो ताने अपनो उदरभरणार्थ जीविका चलायवेको सेवक बहोत किये हते परि उनकों कृतार्थ करिवेकी

तो सामर्थ्य न हती. भगवत्सेवा-भगवन्नाम होय तो जीव कृतार्थ होइ. सो यह तो केवल उदरभरणकेलिये ही महन्त भयो हतो सो मरे पीछे अजगर भयो हो ओर वे सब सेवक चेंटा भये हें. सो वाको खात हें ओर कहत हें जो 'अरे पापी! तोमें कृतार्थ करिवेकी सामर्थ्य न हुती तो हमकों सेवक काहेकों कीयो? हमारो जन्मारो वृथा काहेकों खोयो?' सो वाकों देखिकें मोकोंहु ग्लानि आई हे.''

तब दामोदरदासने कही जो ''महाराज! आप एसी काहे विचारत हो?...'' यह बात श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप याहीकेलिये प्रकट कीये जो जीव शरण जाई, सेवक होई, सो गुरुने अपनो सामर्थ्य विचारके सेवक करने. सिद्धान्त प्रकट करिवेकेलिये आपने यह वार्ता प्रकट किये. ताते सर्वगुणसम्पन्न गुरु तो एक श्रीवल्लभाधीश हें. ताते श्रीगुसांईजीने आप श्रीसर्वोत्तममें श्रीआचार्यजी महाप्रभुनकों नाम ''श्रीकृष्णज्ञानदो गुरुः'' एसो कह्यो हे.

(निजवार्ता. १६)

(३८)

तब श्रीआचार्यजी उह वैष्णवसों कहें जो :—

तू सन्देह मति करे, कासीमें लौकिक लीला देखिकें. मैं अपने भक्तन्के घर सदा बिराजत हों. अब लौकिक लोगन्कों दरसन नाहिं, भगवदीयन्कों नित्य दरसन हे.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.५६। प्र.१)

(३९)

नारायणदास (भाट) श्रीआचार्यजीकों दण्डौत करि पूछे, "महाराज! हम ऐसे मूर्ख क्यों भये, भाट होयके? न कवित्त आवे न दोहा आवे. आछे बोलते हू नाहिं आवे. और जबतें जन्म्यो तबतें मांगते खाते दिन बीते. कबहूं मोकों द्रव्य मिलेगो? मेरे भाग्यमें हे के नाहिं? सो मेरो हाथ तो आप कृपा करि देखो. तब श्रीआचार्यजी कहें जो:—

भली भई जो कवित्त दोहा नाहिं आवत. जो आवते तो, राजसी लोगन्के आगे पढ़त डोलतो. आछी भई जो न पढ़्यो. और ओछे पात्रकों प्रभु द्रव्य नाहिं देत सोऊ कृपा करत हें. द्रव्य पाये द्रव्य-मदसों अनेक जीवन्को बुरो करे. विषय आदि पाप करे. और भूखो तो कबहूं रह्यो नाहिं.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.५८। भा.प्र)

(४०)

और कहें, "अब तुम घर जाऊ. तुमकों दृढ़ भक्ति दीनी हे. और यह पिता हजार रुपैया डारि गयो हे सो पिताको दीजियो." तब नारायणदास (लुहाणा)ने कही, "महाराज! यह मेरी ओरतें भेट राखो." तब श्रीआचार्यजी कहे:—

तेरी ओरकी बहुतेरी भेट राखेंगे. पिता तो थोरे दिनन्में मरेगो तब राखेंगें. यह दैवी द्रव्य नाहिं हे."

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.५९। भा.प्र.)

(४१)

तब दोऊने कही, "हमकों यह मनोरथ हे जो या जन्ममें याही सरीरसों श्रीठाकुरजी हमसों बोले, कृपा करें. सो श्रीठाकुरजी तीर्थ, व्रत किये, साधनसों कैसें मिलेंगे? तातें हम कहा करें? हारिकें व्रतादिक करि सरीर छोड़ेंगें और उपाय कछु जानत नाहिं." तब श्रीआचार्यजी कहें:—

इतनो कष्ट, व्रत करि, सरीरकों देत हो सो श्रीठाकुरजीके सेवा-सुमिरनमें सरीर-मन लगावो तो याही जन्ममें प्रभु कृपा करें.

तब स्त्री-पुरुष दोऊनने कह्यो, "महाराज! श्रीठाकुरजीकी सेवा कैसे बनें? हमने तो कछु नाहिं पास राख्यो. यह दोय कपरा मेले पहरे हें और मा-बापके पास द्रव्य हे सो संसारसुखके लिये जो मांगे सो देई परन्तु परमार्थके अर्थ श्रीठाकुरजीके नामपर एक कोड़ी न देईंगे. हमसों द्वेष करत हें. सो भगवत्सेवा बिना द्रव्य कहांतें होय?" तब श्रीआचार्यजी कहें जो:—

वे द्वेष करें तामें तो तुमकों आछो हे. बहिर्मुखसों बोलनो मिट्यो और सेवालायक तुम दोय चारि आठ घरी कछु उद्यम करोगे तो वाहीमें तुमकों निर्वाह-जोग मिलेगो, ताहिमें निर्वाह करियो... परन्तु तिहारो मन भगवत्सेवा करनमें होय तो उपाय श्रीठाकुरजी सब करेंगे. जो मन न होय तो तिहारी तुम जानों.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.६२। भा.प्र)

(४२)

तब उह पुत्र श्रीआचार्यजीके पास आयके पिताकी बात कही, "महाराज! (श्रीजगन्नाथरायजीके) रथके नीचे मेरो पिता मर्यो, ताको कहा फल?" तब श्रीआचार्यजी कहें:—

मरिवेको कहा फल? भगवान्‌की प्राप्ति भये बिना कहा फल? मरती बेर जहां मन होय तहां जाय. परन्तु याकों स्वर्गकी कामना हती तातें स्वर्गको गयो. कछुक दिन भोग करि गिरेगो. परन्तु तू दैवी जीव हे, तेरे सम्बन्ध करि वाकी मुक्ति होयगी.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.६४। भा.प्र.)

(४३)

तब लघु पुरुषोत्तमदास कवि श्रीआचार्यजीके पास जाय अनेक राजान्‌के दस-पांच कवित्त कहें. तब श्रीआचार्यजी दैवी जीव जानि लघु पुरुषोत्तमदासकी ओर कृपादृष्टि करि कहें:—

लघु पुरुषोत्तमदास! तू श्रीनन्दरायजीके घरको भाट-चारन होय, श्रीठाकुरजीको जस छोड़ि राजसी लोगन्‌को जस गावत हें, सो आछो नाहिं. तू कवि हे, चतुर हे, राजन्‌को ऐसो जस तू कह्यो सो कछु गुन इन राजान्‌में हें? अनेक रोग दुःखसों भरे हें, मृतकवत् पापी, तिनको जस गाय मिथ्याभाषन किये सो आछो नाहिं. गायवेलायक एक श्रीठाकुरजीको जस हे.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.६५। भा.प्र.)

(४४)

तब कविराज भाट श्रीआचार्यजीके पास आय दण्डौत करि एक प्रश्न कियो, महाराज! देवी बड़ी के महादेव बड़े? तब श्रीआचार्यजी कहे:—

शास्त्ररीतिसों श्रीठाकुरजी बड़े, और जाके मनमें जो निश्चय बड़ो मान्यो ताकों सोई बड़ो.

तब कविराज भाटनें कही, "महाराज! श्रीठाकुरजीमें और महादेवजीमें कहा भेद हे? ईश्वर दोऊ कहावत हें." तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहें:—

श्रीभागवतमें कहे हें जो जब भगवान मोहिनीरूप धरे, तब महादेव मोहित भये और महादेव कोई रूप धरे परन्तु श्रीठाकुरजीकों मोहित न करे. तातें भगवान्‌के आधीन महादेव हें. महादेवके आधीन भगवान् नाहिं हें. इतनो तारतम्य हे.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.६६। प्र.१)

(४५)

सो गिरिराजकों देखि कन्हैयाशाल बावरे व्हे गये—न बुलाये बोलें, न उठाये उठें, जाकों देखे ताकी ओर हंसे, कोऊ मुखमें डारि देंइ तो खांय, जो वस्त्र पहिरावे पहिरें. या प्रकार सरीरकी सुधि भूलि गये... तब श्रीआचार्यजी झारीमेंतें जल हाथमें ले वेदमन्त्र पढ़ि कन्हैयाशालके ऊपर छिरके सो कन्हैयाशाल सावधान व्हे गये. तब श्रीआचार्यजीको दण्डौत करि विनती कीनी, "महाराज!

मैं तो बहोत सुखी हतो, व्रजकी गोवर्धनकी लीलामें मगन हतो. तहांतें मोकों बाहिर आप क्यों निकासे? आप तो अधिक दान देन अर्थ प्रगटे हो. सो यह कहा कियो?'' तब श्रीआचार्यजी कहें :—

उच्छलित रस, ऊपरको प्रेम, एक दिन बहि जाय तातें तोकों सावधान कियो. भीतर स्थिर प्रेम होय, लीलारसको अनुभव होय, जगतमें कोई जाने नाहिं. सो प्रेमको कबहूं नास न होय.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.७०। भा.प्र.)

(४६)

तब मार्गमें नरहर संन्यासीने श्रीआचार्यजीसों प्रश्न कियो जो ''हमारे मनमें एक सन्देह हे जो ''महाराज! संन्यासधर्म बड़ो के वैष्णवधर्म बड़ो?'' तब श्रीआचार्यजी कहें :—

इनको प्रकार सब न्यारो हे. संन्यासधर्म कलियुगमें सिद्ध होनो कठिन हे. संन्यास लिये पाछे जहां तक जीवे तहां तांई नारायण बिना कहूं चित्त जाय, तब सगरे जन्मको संन्यासधर्म नास होय. और भक्तिमार्गमें दुःसंगतें भ्रष्ट हू होय जाय, परन्तु भक्तिबीज जाय नाहिं. कबहू सत्संग पाय फेरि बढ़े. सो श्रीभागवतमें कहे हें जड़भरतकों मृगके संगतें तीन जन्मको अन्तराय भयो. पाछे कृतार्थ भयो. चित्रकेतु पार्वतीके शाप करि वृत्रासुर भयो, असुर जोनिमें, तोहू भक्ति बढ़ी. इतनो

तारतम्य हे. और या कलियुगमें भगवन्नामहीतें चाण्डालपर्यन्त पवित्र होय, उद्धार होय.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.७२। भा.प्र)

(४७)

तब (नरोड़ावारे) गोपालदासने श्रीआचार्यजी महाप्रभुनसों कह्यो जो ''वैष्णवधर्ममें कहा हे? ठाकुरजी तो सबके घटमें बिराजत हें. सगरो जगत कृष्णरूप आपहू कहें. तब वैष्णव कुत्ता आदिसों छुई क्यों जात हें? सब भगवद्रूप भयो तहां छुई कैसो जाई?'' तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहें :—

हमारो तो वेदमार्ग हे. सो वेद शास्त्र यह कहत हें जो जगत भगवद्रूप और इतने हीनतें छुई जाई, इतने उत्तम. दया सबके उपर करनों. यह कहे सो वेदरीति वैष्णव करत हें.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.७९। भा.प्र.)

(४८)

...तब श्रीआचार्यजी कहें जो :—

''गोपालदास! तू कहां गयो हतो?''

तब गोपालदासने कही :—

''महाराज! पेट लाग्यो हे. सो कछु व्यावृत्तिकों गयो हतो.''

यह वचन सुनि गोपालदासऊपर श्रीआचार्यजी महाप्रभु

बहोत प्रसन्न भये. कहे :—

''वैष्णवकों ऐसो बोलनो उचित हे. ऐसे बोलनो नाहिं जो व्यावृत्ति लौकिककों जाई तहां श्रीठाकुरजीकी सेवाको नाम लेई.

भावप्रकाश: पुष्टिमार्गीकी यह रीत हे जो, सेवामें जाई तऊ लौकिकको नाम लेई—भगवद्धर्म प्रकास न करें, सो भगवदीय. आछे जीव न होय सो लौकिकमें हू अपनी बड़ाई अर्थ सबके आगे भगवत्सेवाको नाम लेई.

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.७९। प्र.१)

(४९)

...ता समय परमानन्ददास यह पद गावत हते सो वाकी एक तुक कही हती सो पद :—

''कौन यह खेलवेकी बानि।
मदनगोपाललाल काहूकी राखत नांहिन कानि॥

सो यह सुनिके श्रीआचार्यजी परमानन्ददासकों बरजे जो :—

''ऐसे न कहिये! यासों ऐसे कहो जो 'भली यह खेलिवेकी बानि!' ''

भावप्रकाश: सो काहेतें? जो अब ही परमानन्ददासकों दास पदवी दिये हें सो दासभावसों रहे ओर बोले तो प्रभु आगे कृपा करें. जब सख्यभाव दृढ़ होय तब बराबरीसों वार्ता होय. तासो बिना अधिकार अधिक भाव नाहिं हे. जो करे तो नीचे गिरे. सो जब श्रीठाकुरजी सख्यभावको दान करें, तब ही बने.

दूसरो आसय : श्रीआचार्यजी आपु आपनो स्नेह श्रीगोवर्धननाथजीमें राखे सो सर्वोपरि दिखाये जो स्नेहीसों ऐसे न बोले. जो कार्य स्नेही प्रीतिसों न करे सो तासों हू कहिये जो भलो कार्य किये. ऐसी स्नेहकी रीति हे. तासों श्रीआचार्यजी आपु परमानन्ददासकों बरजे— **'' 'कौन यह खेलिवेकी बानि!' या भांतिसों कबहू न कहिये. कहिवे-बरजिवे लायक तो व्रजभक्त हें सो तासों चाहे तैसें बोलें. तासों तुम ऐसे कहो जो 'भली यह खेलिवेकी बानि'. ''**

(चौरा.वैष्ण.वार्ता.८२। प्र.४)

॥ श्रीमत्प्रभुचरणगोस्वामिश्रीविट्ठलनाथवचनामृत ॥

(८४ - २५२ वैष्णवन्की वार्तान्में उपलभ्यमान प्रभुचरण श्रीविट्ठलनाथके वचनामृत)

(१)

श्रीवल्लभाचार्यमते फलं तत्प्राकट्यम् प्रेमैव तत्राव्यभिचारिहेतुः॥
तत्रोपयुक्ता नवधोक्तभक्तिस् तत्रोपयोगोऽखिलसाधनानाम्॥१॥
यः कुर्यात् सुन्दराक्षीणां भवने लास्यनर्तने॥
तासां भावनया नित्यं सहि सर्वफलानुभाक्॥२॥

ये दो श्लोक श्रीगुसांईजी नागजी भट्टकों रहस्य-फलके लिखि पठाए, ताको अभिप्राय यह हे जो :—

''श्रीवल्लभाचार्यजीके मार्ग विषे श्रीठाकुरजीको प्रागट्य हे सोई फल हे. तामें अव्यभिचारिभक्ति हेतु हे. सो जाकों अनन्यता होई ताकों नवधा भक्ति हे. ओर पहिले नवधा भक्ति हे, सो तिन एक-एक भक्तिकों नौ जनेंन करी हे. ताको शास्त्र निरूपन करत हें. तातें विलक्षन जो श्रीआचार्यजी महाप्रभुनको मार्ग दसधा, प्रेमलक्षना अधिक, श्रीआचार्यजी महाप्रभु प्रकट करें. सो ताको हेतु श्रीगुसांईजी लिखे हें... इहां यह दसधा हे सो सब कार्यमें प्रेमसंयुक्त हे. तातें यह दसधा भक्ति श्रेष्ठ हे.''

सो प्रेमलक्षना भक्तिको आसय नागजीकों श्रीगुसांईजी लिखि पठाए, तामें लिख्यो जो :—

सुन्दराक्षी एसें जो व्रजभक्त हें, तिनके भवनमें लास्यनृत्य, रासादि, प्रभु क्रीड़ा करत हें. सो उनके भावन्की नित्य भावना करनी. तातें सर्वफलानुभव होंई.

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता. १।प्र.५)

(२)

तब श्रीगुसांईजी उन ब्राह्मननकों इतनो उत्तर दियो जो श्रीठाकुरजीकी सेवा करत इन ब्राह्मननको वेदोक्त कर्म रहि जात हे सो उनके पलटे तिनके ऋषीश्वर जो हें, वे कर्म करत हें. तहां एसो वचन हे :—

तस्य कर्म ये कुर्वन्ति तस्य कोटि महेश्वरा :''

यह वाक्यतें (जो) वैष्णव-ब्राह्मन भगवत्सेवा करत हें, तिनके सर्वकर्म ऋषीश्वर करत हें. ओर हम कर्म करत हें सो कोनकेलिये करत हें? तहां दृष्टान्त जो कोइको लरिका हे ओर वाकों यज्ञोपवित दियो हे अरु वाकों सन्ध्या सिखाई हे. ता पाछें वाकों सन्ध्याके समै सन्ध्या कराए. तहां लिखे हें जो यह लरिका सात दिन तांई सन्ध्यावन्दन नाहिं करे तो वाकों सूद्रवत् जाननो. तहां ऋषीश्वरनको वाक्य (यहू) हे जो यह लरिका सूद्र नहीं होइ. क्यों जो यह लरिकाको यज्ञोपवित

दीनो हे ताको देवेवारो तो सन्ध्यावन्दन करत हे. तातें वह लरिका सूद्रवत् नाहिं होइ.

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.२ प्र.१४)

(३)

तब श्रीगुसांईजीने कृष्णभट्टसों कह्यो जो :—

एक बड़ो घर हे ओर रात्रि अंधियारी हे. सो ता घरमें केतेक मनुष्यन्कों दीसत हे ओर केतेक मनुष्य तो रात्रिके अन्ध हें. सो जब सूर्य उदय होइगो तब देखेंगे. सो तैसे ही यह संसार हे. तातें याकों तो भगवदीय होइगो तब देखेंगे. ओर जाके भगवत्सम्बन्ध हे सो तो संसार छोरिके जाइगो. ओर जाके भगवत्सम्बन्ध नाहिं हे सो तो संसारमें रहेगो.

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.२। प्र.१४)

(४)

श्रीगुसांईजी यह कहे जो :—

श्रीठाकुरजीको समै बीतीत न होंन दीजे, समै होंए, तब मन्दिर आगें तारी बजाइ संखनाद करवाइके श्रीठाकुरजीकों जगाइये.

यह श्रीगुसांईजी श्रीनाथजीके सेवकनूसों समुझाइकै श्रीमुखतें कहे. ता दिनतें भीतरिया सेवा श्रीनाथजीकी श्रीगुसांईजीकी आज्ञाप्रमान करन लागे.

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.३। प्र.७)

(५)

तब श्रीगुंसाईजी आप आज्ञा किये जो :—

जब तांई प्रभु जीवको कियो सुमरिन-सेवा अंगीकार करे नाहिं तब लों वह दृढ़ होइ नाहिं ओर दृढ भए बिनु फलकी सिद्धि नाहिं. सो चाचाजीकों भगवन्नाम दृढ़ भयो हे. तातें उनमें अष्टाक्षर (को माहात्म्य) प्रगट रूपतें बिराजत हे. ओर तुम्हारे अभी दृढ़ नाहिं. तातें भगवदीयके संगकी अपेक्षा हे.

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.३। प्र.१२)

(६)

तब फेरि श्रीगुसांईजी नारायनदाससों कहे जो :—

तें याकों वैष्णव न जान्यो परि जीव तो जान्यो होतो. सो वैष्णवकों एसी निर्दयता न चहिए. वैष्णवकों जीव मात्र उपर दया राखी चहिए.

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.६। प्र.१)

(७)

तब श्रीगुसांईजी वा वैष्णवसों कहे जो :—

वैष्णव! इतने दिनतें तो तुम अपनी देहको साधन करत हते ओर आज तो तुम साधन छोरिके सेवा करी, तासों आज हम तुमतें बोले.''

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.२३। प्र.१)

(८)

तब श्रीगुसांईजी आप दोउनकों कृपा करि नाम-निवेदन कराए. पाछें दोउनकों निवेदनको स्वरूप समुझाइ कहें जो :—

प्रभु तो सर्वतन्त्रस्वतन्त्र हें. तातें कोई साधन करि उनकों प्राप्त करनो चाहे तो वे सर्वथा प्राप्त न होंई. वे तो अपनी कृपातें आपही प्रसन्न व्हे जीवकों प्राप्त होत हे. तब श्रीगुसांएजी दोउनसों प्रसन्न व्हे आज्ञा किये, जो प्रभुनकी सरनि जात हे तापर प्रभुकी कृपा होत हें. तातें मन-वाचा-कर्मकरि उनकी सरनि रहनो. यही प्रभुप्राप्तिको एकमात्र उपाइ हे. सो तुमकों या निवेदनमन्त्रद्वारा हमने यह उपाइ बतायो हे ताकों तुम हृदयमें धारन करियो.''

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.२५। भा.प्र.)

(९)

ओर श्रीगुसांईजी आप दृष्टान्त दे कहें जो :—

सर्परूपी यह काल हे सो जो वैष्णव भगवन्नामको छोरिके ओर बात करत हें तिनकों यह काल खात हे.

सो श्रीगुसांईजी आप यह आज्ञा वैष्णवसों किये.

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.४२। प्र.१)

(१०)

तब श्रीगुसांईजीने आज्ञा करि जो :—

सुई हे सो सूची हे सो ब्रजभक्तनके चित्तमें भगवत्सम्बन्धकी सूचना करत हे, वा सूचनासों ब्रजभक्तनके चित्त बोहोत प्रसन्न होत हें. तातें खिलत हें सो एसें जाने हें जो अब भगवत्सम्बन्धको हमकों सूचन भयो हे. अब हमारो सीघ्र अंगीकार होइगो.''

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.४४। प्र.१)

(११)

तब श्रीगुसांईजी आज्ञा किये जो :—

मर्यादामार्गमें साधनकी मुख्यता अरु कर्मके फलकी इच्छा रहत हे ओर पुष्टिमार्गमें स्नेहपूर्वक कृष्णसेवा निष्काम भावसों करें हें; ओर, भगवदीयको संग करि भगवदनुग्रहको बल बिचारिकै केवल निःसाधनपनेकी भावना करे. भगवद्धर्मको आचरन करे ये मुख्य हे ओर लौकिक-वैदिक तो लोगनकों दिखायवेके तांई करे. मुख्यता तो भगवद्धर्मकी हे. जामें ठाकुरको सुख होंई सो 'भगवद्धर्म' कहीए ओर सब गौण भाव हें.''

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता ४९। प्र.२)

(१२)

तब ध्यानदासकों श्रीगुसांईजी आप कहे जो :—

कोउ सत्कर्म करत हे ताकी सहायता प्रभु

आप करत हें ओर वैष्णवकों निर्दोष वस्तूनमें दोषारोपन सर्वथा न करनो; ओर, जो करत हें सो आप ही दूषित होत हें. तासों तुम वैष्णव हो सो दोषरहित हो; सो, काहेकों दोषारोपन करत हो?''

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.५१। प्र.१)

(१३)

तब श्रीगुसांईजी आप हरिवंसजीसों आज्ञा किये जो:—

तुम वा वैष्णव रजपूतके घर आचार देखिवेकों गए हे सो देखि आए; परि, ओरहू कछू तुमने देख्यो? ओर वाको स्नेह-वात्सल्य तो नहीं देख्यो ओर यह आचार देख्यो. परि हमकों तो वैष्णवकों प्रेम-प्रीति हे ओर मनकी दैन्यता हे सो देखनी हे. वाकी कृतिसों कहा काम हे?

भावप्रकाश: यामें यह जतायो जो पुष्टिमार्गमें प्रभु जीवकी कृति देखत नाहिं. क्यों जो स्नेहसों प्रभु बस होत हें. जहां स्नेह होई तहां कृतिको प्रयोजन नाहिं. पुष्टिमार्गमें प्रमेयबलतें प्रभु आप जीवको उद्धार करत हें. सो श्रीगुसांईजी विज्ञप्तिमें आज्ञा करत हे सो श्लोक:—

''कियान् पूर्वं जीवस् तदुचितकृतिश्चापि कियती!॥
भवान् यत्सापेक्षो निजचरणदाने बत भवेत!॥''

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.५३। प्र.१)

(१४)

ओरहू उनकों श्रीगुसांईजी यह उपदेस दियो जो:—

आज पाछें वैष्णव कहे सो वचन मान्यो करियो ओर वैष्णवको तिरस्कार मति करियो. प्रभु द्रव्यसों (जैसें) प्रसन्न न होंई तैसें वैष्णवकी सेवासों प्रसन्न होत हें. वैष्णवकों चाकर करिके न जानिए.''

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.५४। प्र.१)

(१५)

तातें वैष्णवकों बिचारिकै चलनो, महद्-अपराधतें एसी गति होत हें. परि वैष्णवके संगतें, दरसनतें, भगवत्प्राप्ति भई. तातें तादृसी वैष्णवकी संगति ऐसी हे.''

ऐसें श्रीगुसांईजी श्रीमुखते कहे.

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.७०। प्र.१)

(१६)

सो काहूको अन्त:करन दुखायके ल्यावे सो वाकों ताप होए, दु:ख पावे, ताकों कलेस-सन्ताप होत हे तब वाको रुधिर सूकत हे. सो वाको रुधिर वा द्रव्यमें आवत हे. ऐसो द्रव्य श्रीठाकुरजी अंगीकार करत नाहिं. ओर जो कोउ कलेसको द्रव्य लेत हे, ताको मन प्रसन्न होत हे तातें वाको रुधिर मांस बढ़त हें. ओर वाको रुधिर सूक्यो. सो जानें द्रव्य खायो ताके उदरमें आयो. सो मनुष्य राक्षसतुल्य हे.''

''ओर बेटीको द्रव्य महानिषिद्ध हे, श्रीठाकुरजीके कामको नाहिं ओर वेउ असुच भयो. सो कीड़ा मांस तुल्य बेटीको द्रव्य हे. सो बेटीके घरको जो कछू वस्तु जलपर्यंत असुच हें. वाके सम्बन्धी कोउ कछू वस्तुकों हाथ छुवनो उचित नाहिं. वस्तु तथा द्रव्य पर मन करे सो श्रीठाकुरजीके काम न आवे.''

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.७१। प्र.१)

(१७)

तब पृथ्वीपति कह्यो जो ''साहिब कोन रीतिसों मिलत हे? तब श्रीगुसांईजीनें कही :—

''जैसे हम तुम मिले.''

भावप्रकाश : यामें यह कह्यो,जो जैसें लौकिकमें तुम पृथ्वीपति सबनसों बड़ें हो सो और मनुष्य तुमवों मिलिवेंकी करें तब घने घनेनकों प्रसन्न करिवेको उपाइ करे. परि तुम्हारी इच्छाके बिनु तो मिलनो दुर्लभ है. और कदाचित् तुम मिलनो बिचारो ताकों तुम तुरत ही मिलो और साकी आर्ति भाजे. और ऐसे हम तुमकों मिलनो विचारे तो तुरत ही मिले. ऐसे जीव बिचारत ही बिचारत और उपाय करत घने घने दिन बीते परि मिलनो कठिन है. और प्रभुजी बिचारे, जो जीवकों हों मिलों तो यामें कछू विलंब नाही.

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता. ७५। प्र.१)

(१८)

तब दोउ जनेंननें उहांकी सब बात श्रीगुसांईजीके आगें कही

जो ''महाराज! हमकों रोजगार तो बोहोत ही भलो बन्यो हो. परि महाराज! उननें हमकों पहिचानें जो ये तो भले वैष्णव हें. तातें महाराज! हम उहांतें भाजे. सो महाराज! इहां हमने आयकै राजके चरनारविन्द देखे.'' तब श्रीगुसांईजीनें अपने श्रीमुखतें कही जो :—

स्याबास! तुम्हारो धर्म रह्यो. तातें वैष्णवको तो यही धर्म हें.''

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.८०। प्र.१)

(१९)

ताही समै श्रीगुसांईजी आपने आत्मनिवेदनको प्रसंग चलायो, तामें कह्यो जो—

सुद्धमनपूर्वक जो जीव आत्मनिवेदन करत हे; ओर, गुरु जो सुद्धमनपूर्वक निवेदन करावत हे, तिनकों श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकी कृपातें दृढ़ आश्रय तत्काल होई. ओर अलौकिक हू दृढ़ होई. ओर पुष्टिमार्गकी लीलाको दान होई. ओर मारगको सब अनुभव होई.

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.८८। प्र.१)

(२०)

सो वैष्णवकों तो एक दृढ़ विस्वास चहिए ओर जाकों दृढ़ आश्रय होंई ताकों जो चाहे सोई होई ओर जो अपने मनमें विचार करे सोई

कार्य करे. जो वैष्णवकों दृढ़ आश्रय नाहिं होई ताकों पश्चात्ताप कलेस होई.

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता. ९४। प्र.२)

(२१)

तब या ब्राह्मनने श्रीगुसांईजी पास आई नमस्कार करि यह पूछ्यो जो "महाराज! कर्ममार्ग बड़ो के ज्ञानमार्ग बड़ो?" तब श्रीगुसांईजी कहें जो :—

जाकों जो रुचे ताके भाये वह मार्ग बड़ो—जो मारगपर विश्वास आवें सोई बड़ो, परि वैसें तो बड़ो भक्तिमार्ग हे, जामें जीव कृतारथ होई. ओर ज्ञानमार्ग कर्ममार्ग तो या कालमें बड़ी कठिनतासों होत हें. तातें कष्टसाध्य हे."

तब या पण्डित ब्राह्मण कह्यो जो "महाराज! भक्तिमार्गमें कहा कर्म नाहिं हें? तब श्रीगुसांईजी आज्ञा किये जो :—

भक्तिमार्गमें कर्म ओर ज्ञान दोउ हें, परि वे दोउ भगवत्सम्बन्धी हें. भक्तिमार्गमें जो कर्म किये जात हें वे सब निष्कामभावसों भक्तिसंयुक्त होत हें. कर्ममार्गमें स्वर्गादिककी कामना करि कर्म किये जात हें; तातें, उनमें निष्कामभाव रहत नाहिं ओर बड़े कष्टसों होत हें... सो या कालमें काहूतें आछी भांति बनत नाहिं. सोउ चित्त प्रसन्न रहत नाहिं. तातें कलेसकों देनहारे हें."

तब यह पण्डित ब्राह्मण कह्यो जो "महाराज ! भक्तिके कर्म कोन प्रकार किये जात हें? तब श्रीगुसांईजी आप आज्ञा किये जो :—

ब्राह्मण सुनि! भक्तिमार्गमें एक कृष्णहीको सरन-आश्रय मुख्य हे. सो गीताजीमें भगवान श्रीमुखसों सरनकी महिमा कही हें तातें भक्तिमार्गमें या सरनि करि जीव प्रवृत होत हे. तब वह जीव देहसम्बन्धी लौकिक वैदिक सब कर्म-धर्म एक भगवानहीकों समर्पन करि निष्कामभावसों उनकी सेवा करत हें. या प्रकार निष्कामभावसों कृष्णार्पन किये कर्म ब्रह्मरूप होई, भक्तिकों उत्पन्न करत हें. ता करि जीव कृतारथ होत हे. ऐसो यह भक्तिमार्ग हे."

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.९९। भा.प्र)

(२२)

तब श्रीगुसांईजी वा वैष्णवसों कहे जो :—

सुनि! श्रीठाकुरजीको नाम 'ईश्वर' हे, 'विस्वंभर' हे, जो मनकी बात नहिं जानि तो 'ईश्वर' नाम काहेकों कहनो परे? तातें श्रीठाकुरजी बड़े दयाल हें, सबकी रक्षा करत हें."

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.१२६। प्र.१)

(२३)

तब श्रीगुसांईजी बिचारे जो :—

वैष्णवकों रंचक हू अन्याश्रय होई तो भगवत्प्राप्ति न होई.''

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.१३४। प्र.१)

(२४)

तब श्रीगुसांईजी आज्ञा किये जो :—

पुष्टिमार्गमें सेवा-कथा दोई मुख्य हें. सो तुमसों जीवनभरि जो निबहे सो करो. नागा न परनी चाहिए.''

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.१४१। भा.प्र)

(२५)

श्रीगुसांईजी यह सुनिकै आज्ञा किये जो :—

वैष्णवकों जो कछु सेवासम्बन्धी कार्य करनो होइ सो भगवदीयनको सत्संग करिके करनो. भगवदीयनतें पूछिकै करनो. जो देखादेखी करे तो उलटो अपराध माथे पड़े. तातें विचारकै करनो.''

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.१४२। प्र.१)

(२६)

तब श्रीगुसांईजी श्रीमुखतें कहे जो :—

वैष्णवको ऐसोई धर्म हे जो काहूसों कहिए नाहिं. गोप्य ही राखिए. वा पठानके बेटानें अपनी देहको त्याग करनो आदर्यो परि अपनो धर्म न

छोर्यो. सो वैष्णवको धर्म ऐसोई हे. तातें वैष्णवनकों दृढ़ आश्रय चहिए. सो ''निजेच्छात: करिष्यति'' श्रीप्रभुजीकी इच्छा होएगी सो कार्य होएगो. काहू बातकी चिन्ता नहीं करनी.''

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.१४७। प्र.१)

(२७)

श्रीगुसांईजी आप श्रीमुखसों कहे जो :—

श्रीगोवर्द्धन मनिमयजटित साक्षात् भगवत्स्वरूप हें. तापर मूढ़-मूरख हें सो या भांतिसों श्रीगिरिराजके उपर चढ़त हें ओर श्रीगोवर्द्धन पर्वतके उपर दोड़त हें... सो श्रीगोवर्धनलीलात्मक भगवस्वरूप आनन्दमय हें सो ऐसे हें. सो गोवर्धन पर्वत आपुनको श्रीआचार्यजी महाप्रभुन आपकी कानि करिकै दरसन देत हें. परि जीवकों ज्ञान नाहिं हें. तातें हमने माथो हलायो जो श्रीगोवर्धन हरिदासवर्य हें सो ऐसें कहिकै या वैष्णवके मिष सब वैष्णवकों सिक्षा दीनी.''

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता.१६१।प.१)

(२८)

सो वा विरक्त ब्राह्मन वैष्णवकों भगवद्लीलाको ज्ञान भयो सो गोप्य वार्ता जानवे लाग्यो. तब वा विरक्त ब्राह्मन वैष्णवने श्रीगुसांईजीसों बिनती कीनी जो ''महाराज! अब मोकों ऐसो उपदेस देउ सो दु:खरूपी संसारतें छूटों ओर भगवल्लीलामें प्राप्ति होवे.

तब श्रीगुसांईजीने श्रीमुखतें आज्ञा दीनी जो "ये बात तो बोहोत कठिन हे जो श्रीठाकुरजी कृपा करें तब यह दसाकी प्राप्ति होय." तब वा विरक्त वैष्णवने सब वैष्णवके उद्धार निमित्त पूछी जो "महाराज! आपकी कृपातें कितनीक बात हे? राजके अधरामृतकै बचन सुनिकै जीव कृतारथ होइ जाए हे." सो ऐसें बचन वा विरक्त ब्राह्मण वैष्णवके सुनिके श्रीगुसांईजीने कह्यो जो :—

पहिले तो वैष्णव ऐसे हते जो अवकास होय तब श्रीयमुनाजीके तीरके विषे बैठिके कीर्तन करते ओर अबकै वैष्णव तो ऐसे हें जो कीर्तन-वार्ता सुनत नाहिं ओर लौकिक-वार्ता बोहोत सुनत हें."

सो ताके उपर कह्यो सो श्लोक :—

"नूनं दैवेन विहता: ये चाच्युतकथासुधाम्।
हित्वा श्रुण्वन्त्यसद्गाथा: पुरीषमिव विड्भुज:॥"

ओर कह्यो जो :—

'सर्वधर्मान् परित्यज्य' सो कैसे होई? सो ऐसे कहे जो 'हों अकिंचन हों' ओर मनमें विचार करे जो 'हों तो श्रीठाकुरजीके चरनारविंदकों आश्रय करत हों' तो सर्वदोष सहजहीमें छूटे. ओर 'लौकिकधर्म हें सो सब वृथा हें' एसो जाने तब सेवकको धर्म सहजमें प्राप्त होई. ओर भगवदीय वैष्णव जो सेवाके धर्म आचरे तो बाधक नाहिं उपजे सो काहेतें जो श्रीठाकुरजी जानें जो 'मेरी सेवा

करत हें' सो ताहीतें श्रीठाकुरजी आप सेवाहीको फल देत हें. ओर ब्रजभक्तन जैसी प्रीति होइ तब अंगीकार होइ. लौकिक प्रपञ्चको लेस हू मनमें न राखे. सर्वस्व करिके श्रीगोवर्धननाथजीकों जानें. जो ओर सर्व बातको त्याग करे ओर वेनुनाद सुने. सो ये भगवदीय वैष्णवकी लीला-प्राप्तिके लक्षन. ताहीतें कुसुमित फल हे, सो फलित होइ. ओर रोमांचित होइ ओर अपने मनमें हरखे. मधुरधारा (बचन) बरखे. तातें भगवदीय वैष्णवको धर्म ऐसोई हे जो भगवत्प्राप्ति तथा भगवदीय वैष्णवनके अर्थ सर्व समर्पत हें. यह तो सर्व बात एकबार होत हे. सो श्रीठाकुरजी तथा ब्रजभक्तनको बोहोत भयो. तातें या प्रकारसों भगवदीय वैष्णवकों सदा रहेनो.

ओर वैष्णवको तीन बस्तुकी रक्षा करनी. सो प्रथम तो विवेक, ता पाछें धैर्य, ता पाछें आश्रय. सो इन तीनोंनको जतन करनो. सो प्रथम तो विवेकको तात्पर्य कहत हें, जो श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करत हें जो 'प्रभु सब आछोही करत हें' ऐसो विस्वास राखनो. केसीहू स्थिति प्राप्त होई परि श्रीठाकुरजीसों प्रार्थना करनी नाहिं— प्रभुजीकी इच्छा होइगी सोई करेंगे. तातें सर्वथा करिके भगवदीय वैष्णवकों प्रार्थना नहीं करनी. मनमें एक निर्धार करनो जो 'श्रीप्रभुजी सब जानत हें. प्रार्थना काहेकों करिए? प्रार्थनाको तो प्रथमही

सिद्ध करिके राखे हें. ओर अपने अदृष्टहू जानत नाहिं जो अदृष्टमें कहा लिख्यो हे? तो श्रीप्रभुजीके धर्म कैसें जानिए? तातें सर्वथा करिकै काहू बातकी प्रार्थना नहीं करनी. श्रीगोवर्धननाथजीने विचार्यो होइगो सोई होइगो. सो सब भलो करेंगे... जीवकों अभिमान सर्वथा नहीं करनो ओर एसो नहीं विचारनो जो 'हों तो ऐसी रीतिसों सेवा करत हों ओर प्रभुजी तो हमारी इच्छातें कार्य करे नाहिं हें. आपकी इच्छाप्रमान कार्य करत हें. सो ऐसो मेरे सरीरकी सेवाको कष्ट हे. मैं कहा करों? मैं तो अब बैठ्यो रहोंगो' ऐसो जीव जो बिचार करिके पर्यो रहे तब वा जीवको कार्य सिद्ध कहांतें होई? सो ऐसो नहीं करनो. सो वैष्णवकों गुरुकी आज्ञा प्रमान चलनो. गुरुकी आज्ञा लोप नहीं करनी. आज्ञाको उल्लंघन करे तो बड़ो अपराध हे. तातें सेवककों तो सदा स्वामीके आधीन रहनो. जब सेवक निवेदन कर्यो हे: पुत्र, दारा, गृह धनादिक सब समर्पन कर्यो हे. तब अब या जीवको कहा हे सो अभिमान करत हे? तातें प्रभुजी जो करेंगे सो आछी ही करेंगे. ऐसो निश्चय राखनो.

ओर दूसरो 'हौं सेवक हों तातें सेवा ही करनी मेरो धर्म हे. तामें तीनों प्रकारके दु:खकों सहन करे' ऐसो विवेक-धैर्य जिनकों आयो होइ ताकों प्रार्थना सर्वथा नाहिं करनी. ओर कोई कहे जो 'श्रीमुख देखिवेकी प्रार्थना नहीं करनी?' तहां कहत हें जो ये तो भगवदीयनको मुख्यधर्म

हे जो श्रीमुख निरखनो. जो बैठ्यो नहीं रहनो, प्रयत्न करनो. श्रीठाकुरजी कोन भांतिसों अंगीकार करत हें? जो एक तो अपने घर बैठे अंगीकार करत हें ओर एक निकट आवे तब अंगीकार होई. तातें या जीवकों सर्वदा सेवामें रहनो, यह आश्रय हे. ओर काहू बातकी चिन्ता नहीं करनी — बैठे नहीं रहनो.

पाछें 'अन्त:करण प्रबोध' वर्णन कियो जो निवेदनभक्तिको प्रकार जाकों दृढ़ होंई ताकों केसोहू दोष न उपजे. सो प्रथम श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप श्रीमुखतें अधरामृतरूप वचन कहे हें जो 'मैं आज्ञा दोइको भंग कियो हे तिनको पश्चात्ताप नाहिं करनो. जानिये जो मैंहू सेवक हूं — मैं तो सर्वस्व श्रीप्रभुजीकों समर्प्यो हे. तातें कहा चिन्ता हे?' सो ताके उपर ओरहू कह्यो हे जो देहको वात्सल्य जानिकै रहिवेको प्रयत्न करें ओर सेवामें सावधान न रहे तो श्रीप्रभुजी आपु अप्रसन्न होई' ताके उपर दृष्टान्त कहें, जेसें वधू प्रौढ़ भई होंइ तब माता-पिता स्नेह करिके घर राखें ओर वाके बरको आदर समाधान बोहोत करें परि बहूकों घर न पठावे तो बरको मन सन्तोष पावे नाहिं. ओर पुत्रीकों वाके घर पठवावे तब वाको बर बोहोत सन्तोषकों पावत हे. ताही प्रकार अपनी देहकों समझिकै सेवामें सावधान रहे तो प्रसन्न होई.''

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता. १६२।प्र.१)

(२९)

“सो श्रीनाथजीको अनप्रसादी द्रव्य पेटमें गयो तातें या अपराधतें यह स्वान भयो सो श्रीठाकुरजीको द्रव्य ऐसोई हे.”

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता. १६६। प्र.२)

(३०)

“याहीतें वैष्णवकों विचारिकै बोलनो. जैसे उज्वल वस्त्र होइ सो तुरत ही दाग लागत हें ओर मलीनकों दाग नाहिं हे.”

ऐसें आपने वैष्णव प्रति कह्यो.

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता. १६६। प्र.२)

(३१)

तब आपने आज्ञा करी जो :—

राजा! जीव आसुरी होइ ते सरनि नहीं आवे. तातें तुम दैवी जीव हो सो सहज ही में सरनि आए ओर सेवा करन लागे.”

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता. १७७। प्र.१)

(३२)

तब श्रीगुसांईजीने किसोरीबाईसों कह्यो जो :—

या मारगमें वैष्णव हें, तिनके तीन स्वरूप

हें : (१)आधिभौतिक (२)आध्यात्मिक (३)आधिदैविक. आधिभौतिक हें सो तो संसारमें हें. आधिदैविक हे सो नित्यलीलामें हें. आध्यात्मिक हें सो लीलामध्यपाती हें. सो ऐसे तीन प्रकारके हमारे वैष्णव हें. वो मारगकी रीति करिके जो सेवा करत हें ओर भावनासों लीलाको अनुभव हू करत हें सो बड़भागी हे. ओर हम तो दैवी जीवनके उद्धारार्थ प्रगट भए हे.”

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता. २०९। प्र.५)

(३३)

तब श्रीगुसांईजी श्रीमुखतें कहे जो :—

भगवदीयको स्वरूप हे सो गंगाजलरूप हे सो ताहीतें उनहींसों मिलेतें हमारो स्वरूप जानेगी. तातें कह्यो जो भगवदीयनको सत्संग करनो. ओर उनकी वार्ता चर्चा सुनत रहनी. उनहीके हाथको महाप्रसाद लीजिए.”

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता. २०९। प्र.५)

(३४)

ओर श्रीमुखतें कहे जो :—

जाको मन सुध होई ताकों प्रभु कृपा करैं, अनुभव जतावें, ओर सहायता करत हें. जो श्रीप्रभुजी तो सर्व करन समर्थ हें.”

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता. २१८। प्र.१)

(३५)

तब श्रीगुसांईजीने चाचा हरिवंसजीसों कही जो :—

वैष्णवको अन्तःकरन सुद्ध देखनो. ओर आचार-विचार देखिवेको कहा प्रयोजन हे? ओर एक दृढ़ आश्रय देखनो ओर कछू जाने नाहिं.''

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता. २१९। प्र.२)

(३६)

तब श्रीगुसांईजी कहें जो :—

यह पुष्टिमार्गमें काल प्रमान नाहिं. ऐसे ही जनम बितीत होइ जाई. जहां तांई स्नेह न होई तहां तांई श्रीठाकुरजी अनुभव नाहिं जनावे. जो स्नेह होए तो श्रीठाकुरजी एक क्षणमें प्रसन्न होई.''

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता. २२३। प्र.१)

(३७)

सो लीला तो या देहसों परे हे, सो या देहसों तो भगवद्लीलाके दरसन नाहिं होत हें.''

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता. २२५। प्र.१)

(३८)

श्रीगुसांईजीने बोहोत ही सराहना करी जो :—

वैष्णवकों ऐसे ही अपनो धर्म (गुप्त) राख्यो

चहिये जो ओरकै आगे कहनो नाहिं.''

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता. २४१। प्र.६)

(३९)

श्रीगुसांईजीकों बिनती कीनी जो ''महाराज! आप तो कपटरूप दिखावत हो ओर आपके यहां तो साक्षात् प्रभु बिराजत हें. (ओर) बाहिर तो वेदोक्त कर्म करत हो.'' तब श्रीगुसांईजीने गोविंदस्वामीसों कह्यो जो :—

भक्तिमार्ग हे सो तो फूलरूपी हे ओर कर्ममार्ग कांटारूपी हे.''

भावप्रकाश : सो फूल तो रक्षा बिना फूले न रहे. तातें वेदोक्त कर्ममार्ग हे सो भक्तिरूपी फूलनकों कांटेनकी बाड़ हे. तातें कर्ममार्गकी बाड़ बिना फूलको जतन न होय, तब जतन बिना फूल हू न रहें. तातें ये वस्तु हे सो गोप्य हे. तातें प्रगट प्रमान त्यों ही हे.

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता. २४७। प्र.१)

(४०)

तब सहजपाल दोशी ओर माधवदासने बिनती कीनी जो ''महाराज! हम व्यौपारमें झूंठ बोले हें सो दोष लगे के नाहिं? तब श्रीगुसांईजी कहे जो :—

'नानृतात् पातकं परमिति' झूंठसों बढ़के ओर कोई पाप नाहिं.''

(दो सौ बावन वैष्ण.वार्ता. २५१। प्र.१)

(४१)

ओर एक समय श्रीगुसांइजीके पास कुम्भनदास बैठे हते ओर सगरे वैष्णव हू बैठे हते. सो श्रीगुसांईजी आपु हंसिके कुम्भनदासजीसों पूछे, जो "कुम्भनदास! तिहारे बेटा कितने हें?" तब कुम्भनदासजीने श्रीगुसांईजीसों कह्यो जो "महाराज! बेटा तो मेरे डेढ़ हें." तब श्रीगुसांईजी कहे जो "हमने तो सात बेटा सुने हें ओर तुम डेढ़ बेटा कहे, ताको कारण कहा?" तब कुम्भनदासजीने कह्यो जो "महाराज! यों तो सात बेटा हें, तामें पांच तो लौकिकासक्त हें, जो वे बेटा काहेके हें? ओर पूरो एक बेटा तो चतुर्भजदास हे. ओर आधो बेटा कृष्णदास हे. सो श्रीगोवर्धननाथजीकी गायनकी सेवा करत हे."

यह कुम्भनदासजीके वचन सुनिके श्रीगुसांईजी आपु प्रसन्न होयके कहे जो :—

कुम्भनदास! तुम सांची बात कही जो भगवदीय हे सोई बेटा हे ओर बहोत भये तो कोन कामके? ...जा मनुष्यमें वैष्णवके लक्षन हें सोई मनुष्य हे ओर कहा भयो जो मनुष्यदेह भई? जो रावण, कुम्भकरण खोटी क्रियातें 'राक्षस' कहाये. यासों जाकी जैसी क्रिया सो वासो तैसो ही रूप जाननो."

(८४ वैष्ण. वार्ता. ८३। प्र.११)

।। श्रीवल्लभवचनामृत ।।

एक समय पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त श्रीगोकुलनाथजीने श्रीगुसांईजीसों पूछ्यो तब श्रीगुसांईजी चाचा हरिवंशजी तथा नागजीभट्ट आदि अनेक भगवदीयन के अर्थ श्रीगोकुलनाथजी प्रति आप अपने पुष्टिमार्गको सिद्धान्त श्रीमुखसों कहें. सो सुनिके चाचा हरिवंशजी तथा नागजीभट्ट आदि अन्तरंग भगवदीय अपने मनमें बहोत ही प्रसन्न भये.

ता पाछें श्रीगोकुलनाथजी आप अपनी बैठकमें पधारे. सो श्रीगुसांईजीके वचनामृतको अनुभव सिद्धान्त अपने मनमें करत हते. ता समे श्रीगोकुलनाथजीके सेवक कल्याणभट्टजीने आयके श्रीगोकुलनाथजीसों दण्डौत किये. तब श्रीगोकुलनाथजी बोले नहीं. आपु तो पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तके रसमें मग्न होइके अनुभव करत हे. तब कल्याणभट्टजी हाथ जोरकें ठाड़े होय रहे. तापाछे चार घड़ीमें श्रीगोकुलनाथजी ऊंची दृष्टि करिकें कल्याणभट्टकी ओर देखे तब फेरि कल्याणभट्टने दण्डौत किये. तब श्रीगोकुलनाथजी आप कल्याणभट्टसों आज्ञा किये ''जो तुम कबके आये हो ?'' तब कल्याणभट्टजीने आपसों बिनती कीनी जो महाराज मोकों आये तो चार घड़ी भइ हे. तब श्रीगोकुलनाथजी प्रसन्न होय श्रीमुखसों आज्ञा किये जो ''आज श्रीगुसांईजी अपने पुष्टिमार्गको सिद्धान्त मोसों कहे हें. सो पुष्टिमार्गकी रीति तो महाकठिन हे, सो बनत नाहिं हे.''

तब कल्याणभट्टने श्रीगोकुलनाथजीतें बिनती कीनी जो ''महाराज कछु हमारे लायक होय सो कृपा करिकें हमसों कहिये. हमको

आपके श्रीमुखके वचन सुनिवेको महामनोरथ हे. ओर पुष्टिमार्गकी रीति तो बननी महाकठिन हे, परन्तु हमको सुनिवेको हु अति दुर्लभ हे.''

यह वचन सुनिके, श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्टके ऊपर बहोत प्रसन्न भये. तब श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति आज्ञा किये जो ''यह वार्ता ओरनके आगे कहिवेकी नहीं हे. तुम भगवद्भक्त हो ओर तुमको पुष्टिमार्गकी रीति सुनिवेमें अत्यन्त प्रीति हे, तातें में तुमसों कहत हों, सो मन लगायकें सुनियो तथा हृदयमें धारण करियो.

अब श्रीगोकुलनाथजी भगवदीयके लक्षण तथा पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त कल्याणभट्ट प्रति कहत हें :—

(१)

[१]सो प्रथम तो अन्याश्रय न करनो, अन्याश्रय महाबाधक हे; ओर, आश्रय तो एक श्रीनाथजीको ही करनो. सो आश्रय सिद्ध भयेतें सर्व कार्य होत हें ओर यह लोकमें सब ठिकाने सुख पावत हे. सो यह जानिकें आश्रय तो एक श्रीजीको ही करनो. सो आश्रयको हेतु यह हे जो अपने प्रभु बिना ओर काहुको न माने. ओर दूसरेसों भूलके मनोरथ न करे. ओर अन्य अवतारनकी अपेक्षा न राखें. जीव तथा देह काहुकी अपेक्षा न राखे. तातें यह बात तो बहुत कठिन हे. सो काहेतें? जो यह संसार तो वृक्षरूप हे ओर

या संसाररूपी वृक्षमें दोय फल हें. दोय फल कोन-कोनसे? एक तो सुख – एक दुःख. सो दोय फल वृक्षमें लगत हें. ओर संसाररूपी वृक्षकी शाखा तो अनेक हें, तिनकी शाखा सो मनके तरंग हें. ओर वृक्ष हे ताको मूल जड़ हे सो बुद्धि हे. ओर फल हे सो अपने गिरवेसों डरपत हे सो हे मोहरूपी बियारके डरते डार शाख फल फूल टूटनतें डरत हें. ओर अपने मुख्य तो वृक्षकी जड़ हे सो दृढ़ होय तो वृक्षको डर नाहिं. सो डार शाखा फल पत्र अपने मूलको दृढ़ जानत नाहिं हे तातें अत्यन्त भय करिकें दुखित होत हे. तेसेइ यह जीव हे. संसाररूपी वृक्षकुं मोहरूपी बियारको डर हे. ताको दुःख दूर करवेको अपने मूलको विचारनो जो अपने मूल तो श्रीभगवान् हें. तिनको जानत नहीं तातें अपने मूलको भूलि गयो हे. ओर या अविद्या करिकें ऐसो बिचार रहत नाहिं जो हमारो मूल भगवान् हें सो सर्वोपर दृढ़ हें, हमको या मोहरूपी बियारकी चिन्ता नाहिं. इतनी बुद्धि दुष्ट स्वभाव करिके, जीवको रहत नाहिं क्यों जो मोहरूपी बियारके डरतें डरपत हे ओर या संसारमें अनेक प्रकारके दुःख पावत हे. तेसेइ या मनुष्यको संसार अहन्ता-ममतात्मक वृक्षरूपी हे. ओर डार याको कुटुम्ब हे. ओर शाखा याकी स्त्री-पुत्र-परिवार हे. पत्र मनके तथा देहके सम्बन्धी अनेक मनोरथके तरंग हें. ओर फल तो दोय सुख-दुःख हे. ओर मूल याके

भगवान् हें. ऐसे अविद्या करिके मोहरूपी बियार लागे हे तब अपने मनमें अत्यन्त भयभीत होत हे. ओर अपने मनमें कहे हे जो 'या बियारतें गिरुंगो'. यह संसारके भय करिके अपने मूल भगवान्को भूल गयो हे ओर अपने कुटुम्बरूपी डार-शाखासों लपटात हे. ओर उनसों मिलिके अनेक प्रकारके दुःख-सुखको अनुभव करत हे. यह वृक्षरूपी मनुष्यको मायारूपी अविद्या लागी हे. ताते मोहके वश होयके डरपत हे जो 'मेरे कुटुम्ब-स्त्री-पुत्रादिकको दुःख होयगो', यह चिन्ता याको मोहरूपी बियार लागेतें होत हे. तातें अपने मूल भगवान् हें सो दृढ़ हें सो मोको लौकिक-अलौकिक चिन्ता नाहिं हें सो भूलि जात हे. तब लौकिक कुटुम्ब मिलिके याको अन्याश्रय करावत हे. सो या प्रकार करत हे ओर लौकिकमें कोइतो कहत हें जो 'तुम कोइ देवताको मनावो तुमको सुख होयगो, तुमारो भलो होयगो.' ओर कोई कहत हें जो 'तुम्हारो मित्र भलो होय तो मिलेगो. तब तुम्हारो कष्ट दूर होयगो.' ओर कोई कहत हे जो 'देवीकी मानता करेतें भलो होयगो'. सो दुर्बुद्धि जीव एसे कहत हें तब यह जीव अन्याश्रय करत हे. सो ज्यों-ज्यों करत हे त्यों-त्यों श्रीठाकुरजीसों दूरि परत हे. सो अन्याश्रय करिके भगवान्तें बहिर्मुख होत हे ओर मोहरूपी बियार केसी हे? जो जीवको भ्रम उपजावत हे. ओर दृढ़ अनन्य भक्त हें सो तो अन्याश्रय सर्वथा

नहीं करत हें; ओर, जब कछु लौकिक सुखदु:ख जीवको होत हे तब यह दृढ़ता राखत हे जो 'श्रीजी करेंगे सो होयगो, मैं तो दास हों, सुख-दु:ख तो देहके प्रारब्धसों होत हें, सो देहकूं भोगेतें छुटेगो, एसी दृढ़ता राखत हें. तिनको दु:ख तत्काल निवृत्त होत हे. प्रथम तो भगवदीयकों दु:ख नाहिं होत हे ओर होत हे सो पाछिले प्रारब्धसों होत हे. सो भगवदीय मानत नाहिं. या प्रकार दृढ़ आश्रय श्रीठाकुरजीको रहे ताकों 'भगवदीय' कहिये.

[२]ओर असमर्पित वस्तु खात हें, तासों श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी बहुत दूर रहत हें.

यह निश्चय जाननो सो यह समजिकें वैष्णवकों यह योग्य हे जो अन्याश्रय न करनो, असमर्पित न खानों, तातें अपने मनमें दृढ़ आश्रय एक श्रीजीको ही करनो. तब वैष्णव या लोक-परलोकमें सुख पावे.

यह प्रकार श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति कहे हें.

(२४ वचनामृत.१)

(२)

अब दूसरो वचनामृत श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति कहत हें जो :—

वैष्णवको प्राणी मात्र ऊपर दया राखनी जो कुञ्जरतें चेंटी पर्यन्त सबमें एकही जीव जाननों.

छोटे-बड़े सब जीव प्रभुके हें, अन्तर्यामी सबमें एक ही हें ओर प्रतिबिम्ब न्यारे-न्यारे दीसत हें, यह जानिके भगवदीयकुं हिंसाते अत्यन्त डरपत रहेनो. आपनतें शीत-उष्ण सबमें विचारत रहेनों ओर काहूको हृदय कल्पावनो नहीं. वचन-मन-देहतें सबको भलो करनो. आपुन वचन-मन-देहतें न्यारो होई, सुख-दु:खतें रहित रहे. तातें वैष्णव होयकें प्राणीमात्र ऊपर दया राखनो.

यह श्रीगोकुलनाथजी वैष्णवकों आज्ञा किये हें.

(२४ वचनामृत.२)

(३)

अब तीसरो वचनामृत श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्टसों कहत हे जो :—

वैष्णवकों सदा प्रसन्न रहनो ओर दु:ख-सुख दोउनको एक-बराबर करिके जाननों. सुखतें हर्ष होय ओर दु:खतें कलेश होय सो न करनों. ओर वैष्णवतें दीन होय प्रीति राखें ओर अहर्निश श्रीजीको ध्यान राखें. द्रव्यादिककुं सुमार्गमें, गुरुसेवामें, वैष्णवसेवामे उठावें ओर अपने शरीरभोगार्थ न उठावें. ओर लौकिक-वैदिक आवश्यक होय तो संकोच सहित प्रभुको दिखाय आज्ञा लेइ उठावें. ओर वैष्णवपास मान छोड़िकें जाय ओर निशंक होयकें भगवत्स्मरण करे. जहां भगवद्वार्तामें संकोच होय तहां भगवद्धर्म न बढ़े ओर सन्देह रहे.

ताते सन्देहकी निवृत्ति होय तहां प्रीति बढ़े ओर ज्ञान होय. अपनी देहको अनित्य करि जाने तब तहां मोह न होय ओर काहुको बुरो न होय. दुःखमें धीरज धरें. ताको उत्तम वैष्णव जाननो.

या प्रकार श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति आज्ञा किये हैं.

(२४ वचनामृत.३)

(४)

अब गोकुलनाथजी वैष्णवनको चोथो वचनामृत कहत हैं जो :—

भगवदीयको क्रोध न करनो. ताको कारण यह हे जो क्रोध हे सो चांडालको स्वरूप हे. सो जहां क्रोध होय तहां भगवद्धर्म तथा भगवान न रहें. क्रोध होत हे तब भगवद्भाव जात रहत हे ओर क्रोध हे सो अग्निरूप हे, भगवद्धर्मको नाश करत हे. जाको क्रोध बहुत होत हे सो क्रोधावेशमें अशुद्ध रहत हे, जेसे चांडालके स्पर्शतें सचैल स्नान करनों पड़े एसो ए दुराचारी हे. सो क्रोधतें जीवकों सचैल स्नान करनों पड़े; नहितो, हाथ-पांव तो धोवनो ओर सोल्हे कुरला करनो. चरणामृत लेइ मनमें शान्त होय तब क्रोधावेशतें छूटें. तातें भगवद्धर्म–भगवत्स्मरण पवित्र होयके करें ओर क्रोधावेशमें देह छूटे तो नर्कमें पड़े,

तथा अधोगति होय. क्यों जो? ''तामसानाम् अधोगतिः.'' ओर बिना कारण, भगवत्सेवासम्बन्ध बिना क्रोध करे तो श्वानयोनि पावे. ओर लोभतें काहुको द्रव्य चुरावे ओर पुछेतें क्रोध करत हें सो सर्पयोनिकु पावत हें. ओर कोई वैष्णवसों ईर्षा करके भगवद्धर्म कीर्तन आदिमें प्रतिबन्ध करिकें छुड़ावें सो वह कुम्भीपाक नरकको कीड़ा साठ हजार वर्ष तांइ होत हे. पाछै सूकर-कूकर-सर्प इत्यादिक योनिकुं पावै हें. ताते भगवद्धर्मसम्बन्धी वार्ता साधारणहु होय तामें विघ्न न करनों. ओर जो क्रोध ईर्षा करिके काहुके घरमें अग्नि लगावत हें सो तीनों पाप करिकें नर्कमें पड़त हे. ओर इर्षा तथा क्रोध तें काहुको विष देत हें अथवा जलमें डुबावत हें; तथा, शस्त्र ले अपघात करत हें, सो नर्क भोगके सर्पयोनिकुं पावत हें. तिनसों दशगुणो प्रायश्चित करत हें तब शुद्ध होवत हें. क्रोध सबरे धर्मनमें बाधक हें. महादुर्बुद्धि होयके अज्ञानतें करत हें. तातें मन लगायके क्रोधको निवारण करनो. सो भगवदिच्छारूपी खड्गतें दूर करें. ओर क्रोध करिकें गुरुकी निन्दा करें तथा कठिन वचन बोलें सो मूसक होंय, पाछें सर्पयोनिकुं पावे हे, ता पाछें प्रेतयोनि पावत हें. ओर भगवद्-अर्थ बिना माता-पितासों क्रोध करत हें सो दरिद्र होत हें. ओर वैष्णवसों क्रोध करत हें तिनको सगरो सुकृत धर्मको नाश होत हे.

या प्रकार श्रीगोकुलनाथजी आप कल्याणभट्टसों आज्ञा किये

हें सो क्रोध महादोष हे सों कहेते पार न आवे. तासों यासों सावधान रहनो.

(२४ वचनामृत.४)

(५)

अब श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति वैष्णवनकों पांचमो लक्षण कहत हें जो :—

वैष्णव होयके एक श्रीभगवानको ही आश्रय जाने ओर भगवत्सेवा विषे एकाग्रचित्त राखे, परमफलरूप जाने; ओर, लौकिक-वैदिकमें मनकी चञ्चलता न राखे. ओर श्रीजीको स्वरूप श्रीभागवतमें तथा पुष्टिमार्गीय ग्रन्थनमें कह्यो हे सो तिनको दर्शन करि ध्यान हृदयमें राखे. जेसे भगवन्नाम स्मरण करे, तेसेही अपने गुरुके नामको हृदयमें स्मरण जप करे. भगवत्कटाक्ष, अंग, वस्त्र, आभरणमें अपनो मन लगायके चिंतवन करे. तथा अनेक लीला हें, तिनको चिंतवन करे. ओर भगवद्नाम बिना जो क्षण जाय तो हृदयमें उसास लैके ताप करे. ओर अस्पर्शमें स्नान करि चरणामृत तथा श्रीयमुनाजीकी रज मुखमें मेले, दोउ नेत्रनसों लगाय माथे धरे, हृदयसों लगावे, तब अलौकिक दृष्टि होय. तब भगवद्धर्म माथे बिराजे, तब हृदय शुद्ध होय. ओर भगवन्मन्दिरमें जाय तो छोटी-मोटी सेवा अपनो भाग्य मानिके करे, पात्र मांजे, मंगलभोग धरि सज्या फेरिके संभारे, मंगल-आरती कर,

तिथि-वार-उत्सव देखि अभ्यंग करावे. ओर जेसो स्वरूप तेसो पुष्टिमार्ग अनुसार, तिथि-ऋतुके अनुसार सिंगार करे. ओर सेवा-सिंगार विषे चित्तको उद्वेग संकल्प-विकल्प न करे. ओर अपने मनमें अपराधको भय राखे. श्रीमहाप्रभुजीकी कृपातें अपनो भाग्य जानिके सेवा करे. मंगला, राजभोग, उत्थापन, सैन कराय सांकर-तारो लगाय, वस्तु सामिग्रीकी चोकसी राखे. पाछें रात्रीको वैष्णवनसों मिलिके भगवद्वार्ता कीर्तन अवश्य करनो ओर कोइ वैष्णव न मिले तो एतन्मार्गीय ग्रन्थनकी टीका देखे. एतन्मार्गीय वैष्णवनमें जायके वार्ता करे-सुने, जेसे सेवामें आलस्य न करे तेसे, वैष्णव मिलापमें आलस न करे. स्नेह(दोउ) होय तब भक्ति बढ़े. जो भगवत्सेवा न बने तोहु वैष्णवको संग न छोड़े, तो दैन्य होय.

या प्रकार श्रीगोकुलनाथजी वैष्णवसों आज्ञा किये.

(२४ वचनामृत.५)

(६)

अब श्रीगोकुलनाथजी छठ्ठो लक्षण कहत हे जो :—

वैष्णवसेवा, भगवत्स्मरण, भगवद्धर्म इनमें पाखण्ड न करनो. ओर काहुके दिखायवेके अर्थ, पूजाअर्थ उद्धारार्थ न करे. आपनो सहजधर्म जानें. जेसे ब्राह्मण गायत्री जपे. लाभ-सन्तोषसुं

सेवा करे. "एककालो द्विकालो वा." ओर विवेक बिना पूजा-सेवा करे तो नर्कमें पड़े. ओर पाखंडीको पूजा-सेवा प्रभु अंगीकार न करें.

या प्रकारसों श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति कहे हैं.

(२४ वचनामृत.६)

(७)

अब श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति वैष्णवनसों सातमों वचनामृत कहत हे जो :—

वैष्णव होयके काहुको अपराध न देखे अथवा सुनेहु नहीं. यद्यपि काननसों सुने ओर आंखनसों देखे परन्तु मनमें रञ्चकहु न लावे. यह जाने जो मैं मायावादरूपी अविद्यामें पर्यो हुं सो मोको दोष दीसत हें, इनमें रञ्चकहु दोष नहीं हे. उत्तमोत्तम देखे.

(मध्यम देखतें कहे)दुष्ट झूंठी-सांची लगाय ईर्षा करी होय, कोइ सो खोटो काम कर्यो होय, अपराध कर्यो होय तोहु, वाको भूलि जाय. वाको प्रसन्न करिके संकोच छुड़ावनो, भलो कार्य होय सो गुणकों प्रकाश करनों. या प्रकार चले तो प्रभु कृपा करिके अपनी भक्तिको दान करें.

सो या प्रकार श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त कहत हें.

(२४ वचनामृत.७)

(८)

अब श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति आठमों लक्षण कहत हें जो :—

वैष्णव होय सो साचो होय ओर लौकिक-अलौकिकमें कपट न राखे ओर भगवदीयसों मिथ्या न बोले. उनकी टहल-सेवा करे, उनसों भगवच्चर्चा करे, उनके हृदयको भाव तथा पुष्टिमार्गको सिद्धान्त अपने हृदयमें धारण करे, ओर बारंबार अपने मनमें विचारे. भगवद्वार्ताको हेतु समजे. भगवदीयसों दीन व्हे रहेनो, ओर भगवदीके आगे अपनी बड़ाई न करनी ओर आज्ञा उल्लंघन न करनो. उनसों स्नेह बहुत राखनो. श्रीठाकुरजीकी लीलावार्ताको प्रकाश न जानत होय तो दीन होयके भगवदीयसो पूछनो. अपनी योग्यता न बतावनी उन भगवदीयनके आगे. भगवद्वार्ता-चर्चा करनी.

या प्रकार श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति आज्ञा किये हें.

(२४ वचनामृत.८)

(९)

अब श्रीगोकुलनाथजी ओरहु आज्ञा करत हें जो :—

कोउ निन्दा दुर्वचन कहे ताको उत्तर न देनो सब सहन करनों. अपनेमें दोष जानि उनसों क्रोध

न करनो. अपने मनमें खेद न करनो ओर उनसों बहुत विरोध होय तो नेंक दूरि रहेनों. उनके कृत्य देखिकें दोष बुद्धि रञ्चकहु न करनी. उनसों 'जय श्रीकृष्ण!' को व्यवहार राखनो. उनकी निन्दा न करनी. या प्रकार वैष्णवनके अपराधते डरपत रहेनो. एसे डरपत रहे ताको सर्वकार्य सिद्ध होय, प्रभु कृपा करिकें हृदयमें पधारें. निन्दा सहनी, यह वैष्णवनको सर्वोपरि परम धर्म हे.

या प्रकार श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति आज्ञा किये हें.

(२४ वचनामृत.९)

(१०)

अब ओरहु श्रीगोकुलनाथजी वैष्णवको दसमों लक्षण कहत हें जो :—

श्रीठाकुरजीकी सेवा काहुके भरोसे ना राखे, अपने सेव्य स्वरूपकी सेवा आपही करनी ओर उत्सवादि समय-अनुसार, अपने वित्त-अनुसार, वस्त्र, आभूषण, भांति-भांतिके मनोरथ करि सामग्री करनी. श्रीठाकुरजीके यहां नित्य-नौतन उत्सव जानि प्रसन्न रहनो. अमंगल-उदासीन कबहु न रहनों. ओर सामिग्री जा उत्सवमें अपने घरकी जो रीति हे सो रीति प्रमाण यथाशक्ति करनी. जो द्रव्य होय सो श्रीकृष्णके अर्थ लगावनो कृपणता नाहिं करनी. ओर भगवत्सेवा

करिके श्रीठाकरजीतें कछु मांगनो नाहिं, या रीतिसों निष्काम होयके श्रीठाकुरजीकी सेवा करनी. ओर जो सूतकी होय, वृद्धि होय, रोगादि प्रतिबन्ध आय पड़े तो अपने सुजाति वैष्णवपें सेवा करवावनी. ओर सुजाति वैष्णव न होय तो मर्यादी वैष्णवको कछु द्रव्य दैके सेवा करावनी. ओर जो मरजादी वैष्णव न होय तो समर्पनीपें सेवा करावनी. ओर समर्पनी वैष्णव गाममें न होय तो नामधारी वैष्णवसों पटवस्त्र थैली हाथमें पहरायके श्रीठाकुरजीकी सेवा करावनी. साक्षात् श्रीठाकुरजीको स्पर्श न करावनों. ओर याके हाथकी अनसखड़ी श्रीठाकुरजी अरोगे परन्तु आप न लेय परन्तु आपुनको बड़ो प्रतिबन्ध आय पड़े तो लेनों. ओर प्रतिबन्ध छूटे, तब एक ब्रत करे तथा भेट काढ़े, तब श्रीठाकुरजीको स्पर्श करनों. ओर अन्यमार्गीयपें श्रीठाकुरजीकी सेवा न करावे. नामधारी न मिले तो आपुई पटवस्त्रसों कोरी सामग्री धरे. श्रीठाकुरजी पोढ़े हीं आरोगें परन्तु सेवा ओरसों सर्वथा नाहिं करावनी. जो शरीर सर्वथा न चले तो श्रीठाकुरजीकों आपुने गामके वैष्णव अथवा ओर गामके वैष्णव हौंय तिनके घर पधरावने. ओर मन करिकें ताप करे जो भगवत्सेवा न भई. तब मन लगायके मानसी सेवा करनी, जा प्रकारसों सेवा पहिले करी होय, ताहि प्रकारसों सेवा करनी. ओर मानसी सेवाको प्रकार यह हे जो अपने मनमें श्रीठाकुरजीको ध्यान करिकें श्रीठाकुरजी, श्रीआचार्यजी, श्रीगुसांईजीके

बालक जिनसों समर्पण कियो होय सो गुरुदेव, श्रीजी तथा सातों स्वरूप अपने गुरुके सेव्यरूप होंय तिनको नियमपूर्वक अन्तःकरणसों दण्डौत करनों, पाछें मनही करिके मंगलभोग धरि मंगला आरती करें, पाछे अभ्यंग स्नान, अंगवस्त्र आभूषण ऋतुके अनुसार धरावे. या प्रकार राजभोग उत्थापन सैन पर्यंतकी सेवाकी भावना करनी परन्तु मनमें सन्तोष न राखे, यह जाने जो मोसों साक्षात् हस्तसों सेवा कब करावेगें जासों भगवत्सेवामें एकादश इन्द्रियनको विनियोग होय, यह ताप करे, या प्रकारसों रहे, सो उत्तम वैष्णव हे.

या प्रकार श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति कहे हें.

(२४ वचनामृत.१०)

(११)

अब ओरहु श्रीगोकुलनाथजी ग्यारहमों लक्षण कहत हें जो :—

वैष्णव होय सो प्राणीमात्र ऊपर दया राखे. ओर वैष्णव अपने घर आवे तो प्रसन्न होय रहे ओर जाने जो "वैष्णवद्वारा प्रभु पधारे हें" यह जानि तेल लगाय, ताते पानीसों न्हवाय, सुन्दर ऋतु-अनुसार वस्त्र पहिराय, नाना प्रकारके महाप्रसाद लिवावे जो सामर्थ्य होय सो समयके सनमान करि प्रसन्न करनो. ओर काहुको ऋण काढ़के न करनो, ऋण हत्या बराबर हें, काहुको

दुःख दैकें कार्य न करनो, या भावसों वैष्णवको रहनों. ओर अन्यमार्गके श्रीठाकुरजीकी सेवा न करनी. ओर बिना मर्यादाके ठाकुर अपने श्रीठाकुरजी पास न बैठावनें. अपने श्रीठाकुरजीकी सामग्री विना मर्यादीको न देनों, प्रसादी होय सो बिना मर्यादीके श्रीठाकुरजी आगे भोग धरनों, सो प्रसाद मर्यादी न लेय, लीलाको भाव अन्यमार्गी तथा पात्र बिना न कहेनों. पुष्टिमार्गमें अनन्य होय तासों मिलिके निवेदनको तथा लीलाको भाव स्मरण करनों. ओर अपने गुरुने मन्त्र दियो होय, अष्टाक्षर, पञ्चाक्षर, तिनको प्रकाश जहां-तहां पात्र बिना न करनो. अपने श्रीठाकुरजीकी सेवा जहां तांई बने तहां तांई ओरके घर न पधरावनी. अपने घर सेवाको सौकर्य-सामर्थ्य न होय तो ओरके घर जाय, दोय घड़ी सेवा करें, परन्तु रञ्चकहु नियमपूर्वक करनी चहिये. तेसेइ भगवदीयको संगहु नियमपूर्वक करनो चहिये.

या प्रकार श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त कहे हें.

(२४ वचनामृत.११)

(१२)

अब श्रीगोकुलनाथजी द्वादशमों वचनामृत कहत हें जो :—

वैष्णव अपने सेव्य स्वरूपको साक्षात् पुरुषोत्तम

जानिकें सेवा करनी ओर अन्यमार्गीयके ठाकुरकों अपने श्रीठाकुरजीके बराबर न जानें, ओर हस्ताक्षर, वस्त्रसेवा, चित्रसेवा में अन्यभाव न जानें, साक्षात् जानि अपराधको भय राखे. गृहस्थधर्म सेवा-अर्थ जाने, अपने सुख अर्थ न जानें ओर अपनी देह अनित्य जानें, श्रीठाकुरजीकी देह नित्य जाने. श्रीठाकुरजीकी देह तथा भगवदीयकी देह अनित्य करि जाने नहीं. लौकिक सुख तुच्छ जाने. जो भगवत्सेवामें प्रीत राखें तिनसो प्रीति विशेष राखें, इतनी लौकिक-वैदिक वस्तुमें न राखे. पराई वस्तु, पराई सत्ता होय तामें लोभ न राखे. कछु प्राप्त भयेतें सुख न मानें—कछु हानि भयेतें दुःख न मानें. गृहस्थधर्मके शास्त्र काहुसों सुनिकें लौकिकमें लीन होय न जानो. पुष्टिमार्गीय सम्बन्धी शास्त्रके वचननकों विचारत रहेनो. ओर सब शास्त्र पुष्टिमार्गते अन्तराय करवेबारे हें, यह निश्चय जाननो. ओर भगवत्कार्य, गुरुकार्य, वैष्णवकार्य में मन राखें. जेसे जलतें कमल न्यारो हें, तेसे लौकिक-वैदिकतें न्यारो रहे. ओर श्रीभागवत तथा श्रीआचार्यजी के ग्रन्थनको भगवत्स्वरूप जानें. ओर श्रीसर्वोत्तमजीको पाठ तथा जप मन लगायके करनो. यह पुष्टिमार्गीय वैष्णवकी गायत्री हे, तातें सगरे प्रतिबन्ध दूर करि पुष्टिमार्गको फल पावे. ओर श्रीयमुनाष्टक आदि पाठ नित्य करने ओर सर्वोत्तमजीको पाठ-जप नियमपूर्वक करनो. गद्यके श्लोकको भाव विचारिके ताप-क्लेश करनो. ओर सदा पवित्र रहनो, कुचैल

मनुष्यको छुहुवेउकी ग्लानि राखे, वैष्णवनके वस्त्रमें बहुत ग्लानि न राखें. अलौकिक देहसों लग्यों रहे ओर काहुके दिखायवेके लिये बड़ी अपरस न राखे. ओर जहां-तहां विचारे विना खान-पान न करनों.

या प्रकार श्रीगोकुलनाथजी आज्ञा करत हें.

(२४ वचनामृत.१२)

(१३)

अब श्रीगोकुलनाथजी तेरहमों लक्षण कहत हें जो :—

भगवदीय वैष्णवको काहुसों विरोध न राखनों. ओर जहां क्रोधकी वार्ता होय तहां ठाड़े न रहनो. ओर सबनसों सर्वात्मभावसों हित राखनो. उनकी बात झूठी होय सो अपने कहेतें खेद पावे सो न कहनी. ओर सांची कहेते खेद पावे सोहु न कहनी. याही प्रकार विवेकपूर्वक चलनो. ताको 'भगवदीय' कहिये. ओर वैष्णवकी निन्दा करे तो नरकमें पड़े. तहां विचार हे जो वैष्णव कुमार्ग चले तो समजावनो—मनमें दोष लायके निन्दा न करनी. अथवा मार्गकी रीतिसो विपरीत चले ताको वैष्णव न जाननों. यद्यपि बड़ो पण्डित होय ओर समुझिवेवारो होय परन्तु वाको अपने सम्प्रदायको ज्ञान न होय तो वाको संग बड़ो दुःखदाई हे. ओर थोरो समझे परन्तु पुष्टिमार्गमें

तत्पर होय ताको संग हितकारी हे. वैष्णवकी निन्दातें कोटि-कोटि अपराधतें दुखी होय. ओर वैष्णव होयके लौकिक वस्तुमें तृष्णा न राखे ओर कामनातें दुर्बुद्धि होय ओर तृष्णातें केवल स्वार्थ होय तब भलो-बुरो न सूझे—केवल स्वार्थ होय तब प्रसन्न होय, स्वार्थ न होय तो निन्दा करे. ओर तृष्णातें मनमें संकल्प-विकल्प होत हें, तब अपनो स्वरूप, अपनो धर्म भूलि जात हें. तब मनमें अनेक प्रकारके लोभरूपी तरंग उठत हें सो लोभ होयवेपें भलो-बुरो कार्य सूझे नाहिं ओर विवेक ज्ञान सब जात रहे. तब झूंठी-सांची बात बनायके अपने कार्यमें तत्पर होवत हे. द्रव्य तथा वस्तु लेतमें डरपत नाहिं हे ओर द्रव्यकी रक्षाके अर्थ अनेक जतन करत हे. तातें वैषणवको लोभ-तृष्णा करनो उचित नाहिं. वैष्णवको अपराध होयगो तब श्रीठाकुरजी मति कहुं अप्रसन्न होय जाय ओर यह काल तो सगरे जगतको ग्रसत हे, सो मोहुको ले जायगो, तातें लौकिक-वैदिकमें आसक्त न होय. ओर करे बिना न चले तातें सहजमें बनेसो करे परन्तु मनते आसक्त न रहे. यह मनमें जाने जो अपने धर्म बिना सहाय करिबेवारो कोई नहीं हे. अपनो वैष्णव धर्म गयो तब सब गयो. सो वैष्णवधर्म दृढ़ होय तो प्रभु सहाय करें ओर धर्म गयो ओर कछु लौकिक सिद्ध भयो तो वो लौकिक चार दिनमें जात रहे ओर परलोक बिगड़े. तातें भगवद्धर्मको माहात्म्य हृदेमें

राखिके केवल प्रभुनको आश्रय करनो. ओर स्वार्थतें धर्म जाय. अथवा लौकिक विषयादिक सुखके अर्थ करे तो धर्म जाय. ओर श्रीठाकुरजीतें गुरु विषे अधिक प्रीति राखनी. यह जाने जों कछु भयो हे सो इनकी कृपाते भयो हे ओर आगेहु इनकी कृपाते होयगो. सो तो योगेश्वरके प्रसंगमें कह्यो हे जो ''श्रीठाकुरजीमें बड़ी प्रीति होय ओर गुरु विषे भाव तथा वैष्णव विषे दया नहीं होय तो वे सब राखमें होमत हे. ओर वैष्णवको तथा गुरुको समाधान प्रभु साक्षात् अपनो करिके मानत हैं. ओर वैष्णवसों मिलके अपने जन्म-जन्मके प्राणप्रिय श्रीठाकुरजी तिनको स्मरण करे. सो मनमें यह मनोरथ राखे जो श्रीठाकुरजी प्रसन्न कब होंय. लौकिक कार्य-अर्थ न राखे.

या प्रकार श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति वैष्णवकेलिये शिक्षा दिये हैं.

(२४ वचनामृत.१३)

(१४)

अब श्रीगोकुलनाथजी चौदहमों लक्षण कहत हैं जो :—

वैष्णव लौकिक-वैदिक-कार्य (देहकार्य?) अनित्य करि जाने; ओर, पुष्टिमार्गको धर्म सत्य जानि कार्यमें तत्पर रहे. ओर कोई धर्म तथा लौकिक

कार्य तुच्छ जानि दुःखरूप जाने. ओर तीर्थको माहात्म्य सुनिके मनकों सेवा-स्मरणतें चलावनो नहीं. ओर तीर्थको फल तुच्छ करि जाने जो गंगाजी सरिखे तीर्थ जगतमें कोउ नाहिं सो ''रुक्मिणी मनमेंहु न लाई''. ओर वेद गीता श्रीभागवत पुराण शास्त्र इनके वचन सत्य करि जाने परन्तु अनेक प्रकारके अधिकारी हैं तिनके अर्थ जाननों. ओर पुष्टिमार्गके वचन तथा धर्म मनमें राखनो. ओर अनेक प्रकारके फल तुच्छ करि जाननों. जयन्ती आदि एकादशी सत्य करि जानने परन्तु फलकी कामना मनमें न राखें ओर भगवत्सेवा-स्मरण सर्वोपरि जाने. ओर लौकिक विषयके अर्थ स्त्रीको न जानें ओर विषय भगवदीय पुत्र होवेके अर्थ करे. ओर भगवत्सेवा-अर्थ स्त्रीमें प्रीति राखे. भगवदीयसों भगवद्वार्ता दैन्यपूर्वक करे, अपनी उत्कर्षता न जनावे. ओर अपनेको ज्ञान न होय तो शुद्धभावसों प्रश्न करे ओर भगवद्भावकी वार्ता अपने मनमें दृढ़ विश्वास करि राखे. उन भगवदीयकी लौकिक चेष्टा न देखें तो भगवद्धर्म हृदयमें दृढ़ करिके रहे.''

या प्रकारसो श्रीगोकुलनाथजी आज्ञा किये हैं.

(२४ वचनामृत.१४).

(१५)

अब ओरहु श्रीगोकुलनाथजी पुष्टिमार्गको सिद्धान्त कहत हैं जो :—

वैष्णवको लौकिककमें आतुरता न राखनी. लौकिककी आतुरतासों सेवा विषे उद्वेग होय. तब प्रभु प्रतिबन्ध करें सो ''उद्वेगः प्रतिबन्धो वा भोगो वा स्यात्तु बाधकम्'' ऐसे कहे हें. सो सेवामें लौकिक जीवको समाधान न करे ओर सेवामें गुरुको कार्य तथा भगवदीयको कार्य करे तो चिन्ता नाहिं. सो प्रभु अपनो कार्य जानि बेगही प्रसन्न होंय. ओर मुखरतादोष बहुत बड़ो हे सो न करनो. लौकिकवार्ता कहे-सुनेते भीतरतें आसुरावेश होय तासों सेवामें काहूसों सम्भाषण न करनो ओर लौकिक बातहु न करनी. ओर सेवा विषे बहुत बोलनों नाहिं. ओर काहुकी झूंठी-सांची करनी नहीं. श्रीठाकुरजीकी प्रीतिसों प्रभुनको उपकार मानिकें टहल करनी. ऐसे जानिके करनी जो प्रभुनने कृपा करिके टहल करवाई हे. ओर सेवा करिके कछु लौकिक-वैदिकमें वासना न राखनी. अपनो मुख्य वैष्णव धर्म जानि सेवा करे. ओर वैष्णव होयके कछु दुःखमें व्याप्त न होनों. ओर श्रीठाकुरजीके वस्त्र आभरण सामग्री स्वरूपात्मक जाननें, तातें जो कछु प्रभुसम्बन्धी होय तो अपनो लौकिक न जाने. ओर प्रभुनको नये वस्त्र कराय, प्रसादीसो अपनो कार्य चलावे, ओर आप बिनापरसादी पहरे तो बहिर्मुखता होय. ओर चिन्ता-कष्ट काहु बातको अपने मनमें न लावे. ओर अपने भोगकी निवृत्ति दुःख करके जानें. सुखमें प्रभुनको भूलि जात हें तातें सुखतें दुःख भलो जो प्रभुनको स्मरण

तो होय! सोई कुन्तीजीने कही हे जो ''विपत्ति भली जामें आपको दर्शन होय''. ओर पुष्टिमार्गीय पञ्चाक्षर मन्त्रको जप करनों. ओर भगवन्नामके भूलेते आसुरावेश होय हे ओर कालादिक खाय जात हें. ओर श्रीठाकुरजीकी बाललीला, किशोरलीला ओर व्रजसम्बन्धीलीला, इनके गान सुनेते श्रीठाकुरजी बेगही प्रसन्न होंय. ओर भगवदीय वैष्णवके आगे लीलाको गान करनो. साधारण कोई बैठो होय तो शिक्षाकी बात कहनी, शिक्षाके कीर्तन गान करने. जो भक्तिमार्गको द्वेषी बहिर्मुख बेठ्यो होय तो अपने मनमें गुनगान भगवत्स्मरण करनो. बाहिर अपने धर्मको प्रकाश करे नहीं ओर भगवदीयको सेवा-स्मरण तथा भगवद्धर्म बढ़ायवेको उपाय करनों. ओर काम क्रोध मद मत्सरता लौकिक-आवेश सर्वथा दूरि करनों. अपने पास तथा ओर वैष्णवके पास लौकिक आवे तो भगवद्धर्ममें मन लगायवेकी शिक्षा करनों. ओर न माने तो कछु बोलनो नहीं ओर वासों बहुत प्रीति न करनी. ओर भगवदीयके मिलिवेको उपाय करनों. उनकी टहल करि, प्रसन्न करि, भगवद्धर्म पूछनों सो विश्वास करि पूछनों-चलनों. ओर जो कछु भगवद्धर्म न बनि आवे तो तापक्लेश करनों. ओर भगवदीयको तथा अपने गुरुको घर लायके प्रसन्न करनों. ओर भगवदीयसों लौकिक वार्ता न करनीं जो यह काल परम दुर्लभ हे सो यह जानिके पुष्टिमार्गको प्रकार पूछनों ओर भगवदीय देशान्तरतें आये होंय

तो उनसो मिलनों. जो भगवदीयके हृदयमें प्रभु बिराजत हें. सो तिनके मिलेते हृदय पवित्र होय तब अपने हृदयमें प्रभु कृपा करिके सर्वथा पधारेंगे, यह भाव जाननों.''

या प्रकार श्रीगोकुलनाथजी वैष्णवको शिक्षा किये हें.

(२४ वचनामृत.१५)

(१६)

अब ओरहु श्रीगोकुलनाथजी आज्ञा करत हें जो :—

वैष्णव देश-परदेशकूं जाय ओर श्रीठाकुरजी बिराजत होंय तो तहां चलिके जाय. ओर श्रीवल्लभकुल बिराजत होंय तो महा नम्र होय जायके दर्शन करे. ता पाछे खानपान करे. ओर जहां अन्यमार्गीय पूजा होत हे तहां सर्वथा न जानों. ओर जहां श्रीपुष्टिपुरुषोत्तम बिराजत होंय ओर श्रीवल्लभकुल बिराजत होय तहां खाली हाथ न जानो. ओर नित्य न बनि आवे तो जब जाय तब अथवा बिदाय होय तब यथाशक्ति फलफूल पहुंचावनों; ओर, भेट करनी. ओर श्रीनाथजीके दर्शनमें आलस्य न करनों ओर प्रभुनके दर्शनमें आलस्य करे तो अज्ञान बढ़े. प्रभुनकी सेवा करत होय ओर दर्शन होय चुके तो अपराध नहीं. दर्शनतें ज्ञान होय ओर ज्ञान हृदयमें भयेतें भगवत्स्वरूप हृदेमें आरूढ़ होय. अज्ञानतें विषयादिकमें

आसक्ति होय ओर जप करे सों काहूसों जतावे नहीं. जपभाव हें सो अत्यन्त गोपनीय हे. ओर शास्त्रमें कहें हें कि जो जप एसे करनो जो होठ रञ्चकहु खुले नहीं. या भांति भीतर अनुभव करतहीं जप करनो. ओर गौमुखीकी माला बाहर काढनी नहीं ओर माला भीतर उरझि जाय तो उपरिके मनिका निकासिकें सुरझायके ऐसे धरे जो फिर न उरझे. ओर मनिका १०८ राखे, तिनसों जप करे, ओर सुमेरको उलंघन न करे, सुमेरको उल्लंघन करे तो लीलातें बाहिर परे. जपको फल तिरोधान होय ओर गौमुखी उपरणामें ढांकिके जप करनो. ओर गौमुखी हे सो अलौकिक हे. ओर जपमें बोलनों नाहिं. देह-मनको चञ्चल न करनो, नेत्र मुंदे रहे, सो लौकिकमें द्रष्टि न जाय, जपकी सेवाकों साधारण लौकिकक्रिया न जानें. जो लौकिक जाने तो वासों प्रभु जप न करावे ओर प्रतिबन्ध होय. तातें सेवा-जपको माहात्म्य भूले नाहिं. माहात्म्य भूले ओर याको साधारन जानें तब आलस्य होय. आलस्यतें अज्ञान होय, अज्ञानतें दुर्बुद्धि संसारासक्ति होय, संसारासक्तितें श्रीठाकुरजीतें बहिर्मुखता होय. यह कहे जो सेवा दर्शन ओर जप-पाठते कहा होयगो ओर लौकिक बिना निर्वाह कैसे होयगो ओर वैष्णव मिले तो पाखण्ड करिके कहे जो 'सेवा दर्शनमें कहा हे? ओर मन लगेगो तब कार्य होयगो सो वे तो योंहि पचि मरत हें', सो या प्रकार सिद्धान्त करि लौकिकमें तत्पर

होय ओर मन हे सो भगवत्सेवा कीर्तन वार्ता करवेमें लगेंगे परन्तु जीवकी उल्टी गति हे. ताते भगवद्धर्ममें मन लगत नाहिं सो याही प्रकार दुष्ट सिद्धान्ततें श्रीठाकुरजी अप्रसन्न होत हें. ओर भगवद्धर्मको एसो साधारण न जाने, अलौकिक जाने, ओर यह कहे जो 'मेरी लौकिकदेह तासों श्रीप्रभु कृपा करिके अलौकिक सेवा करावें हें ओर लौकिक जीह्वाते भगवन्नाम निकसत हें, सो बड़ी श्रीमहाप्रभुजीकी कृपाते प्राप्त भयो हे. लौकिक तो सघरी योनिमें सिद्ध होत आये हें ओर प्रभुके स्वरूपको दर्शन सेवा स्मरण जप पाठ तो परम दुर्लभ हे'. सो यह माहात्म्य जाने तब प्रीति होय.''

या प्रकार श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति वैष्णवकों शिक्षा दिये हें.

(२४ वचनामृत.१६).

(१७)

अब श्रीगोकुलनाथजी सप्तदशमो वचनामृत कहत हें:—

सो वैष्णव होय सो या प्रकार पुष्टिमार्गकों सर्वोपरि जानें तब पुष्टिमार्गमें रुचि होय. सर्वोपरि मार्ग कब दीसे? जब पुष्टिमार्गीय अनन्य भगवदीयको संग होय. दैन्यभावसों भगवदीयके कहेको विश्वास होय तब फल सिद्ध होय ओर भगवदीयको लौकिक

न जानें, जो भगवदीयके हृदयमें प्रभु बिराजे हें; ओर, भगवदीयकी देह इन्द्रिय मन अलौकिक हें सो उनके संगतें यह अलौकिक होय. सो अलौकिक केसे जानियें? जो दुखमें विवेक धैर्य आश्रय दृढ़ होय; ओर काहूतें कपट छल निन्दा, काहुकों बुरो न चीते. ओर चोरी तथा विषय लौकिक न करे, जो कोई संजोग पायके होय जाय तो बहुत खेद पावे, ऐसे भगवदीयको संग सदा करनो. जेसे श्रीठाकुरजीके दर्शनतें पवित्र होंय ऐसे भगवदीयके दर्शनतें पवित्र होंय. भगवदीयको संग होतही मनमें आनन्द तथा भगवद्धर्मकी स्फूर्ति होय. ओर भगवदीयकी सेवाते श्रीठाकुरजी बहुत प्रसन्न होंय. ओर भगवदीयके संगतें असमर्पित अन्याश्रय छूटे, असमर्पित लियेतें आसुरावेश होत हे, अन्याश्रयतें वैष्णवधर्म पातिव्रत्य जात हें. जैसे व्यभिचारिणी होय हे ताको भ्रष्ट जाननो. पुष्टिमार्गमें अंगीकार न होय, अनेक मायाके दुःख पावे ओर वैष्णवको अपने अर्थ उद्यम न करनों. ओर मनमें यह विचारनों जो व्योहार कियेतें प्राप्ति होय तो वैष्णवसेवा, गुरुसेवामें कछु अंगीकार होय. सो यह भाव राखें तो लौकिक व्यौहार बाधक नाहिं होय. अपने कुटुम्बको भरणपोषण चल्यो जाय ओर भगवद्धर्म बढ़े ओर व्यवहारहु अलौकिक करें. अनिषिद्ध सत्यको करे ओर वामें हू सघरे दिन पच्यो न रहे. राजभोग पाछे उत्थापनके भीतर इतने में करे. सो इतनेहीमें आवनहार होयगो सो प्राप्त होयगो. सो सेवा

दर्शन नियमसों करे ओर बहुत द्रव्य कमावे तो अपने घर श्रीठाकुरजी तथा गुरुनको पधरावे. ओर वस्त्र आभूषण भेट करे ओर अलौकिक मनोरथमें चित्त राखें. ओर नाना प्रकारकी सामग्री करिकें श्रीठाकुरजीको आरोगावें. तापाछे वैष्णवकों महाप्रसाद लिवावें ओर द्रव्यको संकोच होय तबहु श्रीठाकुरजीके पात्र तथा आभरन वस्त्र इनमें अपनी सत्ता न जानें, या प्रकार अपराधतें डरपत रहें ओर धीरज राखे. यों न जानें जो राजा कुटुम्बको भय राखिकें अपने गुरुके घर पधराइये तो सुख होय तो वैभव बढ़ावनो नहीं. ओर नाना प्रकारकी सामग्री भोग धरि पाछें वैष्णवकों महाप्रसाद लिवावे तामें द्रव्यकी सफलता होय. तातें कोई बातको दुःख न पावे. छिन-छिनमें प्रभुनको नाम स्मरण करनो ओर मनमें दयाभाव राखनों. अहंकारादिक मनमें न राखनें.''

या प्रकार श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति कहे हें.

(२४ वचनामृत.१७).

(१८)

अब श्रीगोकुलनाथजी अट्ठारहमों वचनामृत कहत हें जो :—

जहां अपने मार्गकी निन्दा तथा श्रीवल्लभकुलकी निन्दा अपने वैष्णवकी तथा धर्मकी निन्दा होय ऐसे दुष्टजीवके पास कबहु न बैठिये. ओर अवश्य कारण पायकें मिलाप होय तो अपने पुष्टिमार्गकी चर्चा-वार्ता करनी नहीं. ओर कोउ चलावे तो

वाहि गोप्य करि राखें. सो तहां प्रकाश न करें. प्रकाश करे तो अपराध पड़े. सों काननमें निन्दा सुनेतें यह शास्त्रमें कहे हें जो 'अपने प्रभुकी निंदा सुने अथवा करे तो ताकी जीभ काटि लीजे ओर अपनों वश न होयतो तहांते भाजि जानों परन्तु कानसों सुने नहीं', जैसे हरिदासने जेमलको शिक्षा दीनी सो जहां तांई ऐसे बहिर्मुखसो मिलाप न करनो जो बहिर्मुख होय सो एतन्मार्गकी निन्दा करे. ओर आछो ब्राह्मण पण्डित होय वा अच्छो छत्री होय, परन्तु एतन्मार्गको विरोधी होय तो वह बहिर्मुख हे. ओर वो यों ही जात हे ओर एतन्मार्गमें अत्यन्त श्रद्धा हे, ताकों दैवी जीव जाननो. सो दूसरे जन्ममें शरण आवेगो जो जीव पुष्टिमार्गमें तो आयो परन्तु याको पुष्टिमार्गको फल नाहिं होय ओर शरण प्रतापतें मुक्तिमार्गकों तो पावेगो. ओर संसारी हे ओर एतन्मार्गमें प्रीति हे, साधारण हे, सो तिनकों लौकिक-वैदिक कार्यार्थ मिलनों, ओर एतन्मार्गके द्वेषीको सर्वथा त्याग करनों.''

या प्रकार श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति कहे हें.

(२४ वचनामृत.१८).

(१९)

अब ओरहु श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति उन्नीसमों लक्षण कहत हें जो :—

वैष्णव होयके भगवदीय पास आवे तो वाके संशय दूरि करि पुष्टिमार्गीय भगवद्धर्म बढ़ावे. सुगम उपाय बतावे. तातें वैष्णवको मन बढ़े सो नवरत्नमें कहत हें "अज्ञानाद् अथवा ज्ञानात् कृतम् आत्मनिवेदनम्" सो अज्ञान करिके शरण ही आवे सो शरण आयेतें जीवको सर्वकार्य सिद्ध होय हे. ओर कहे हें जो "निवेदनन्तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैः जनैः" सो शरण आये पाछे वैष्णवको संग करे तब ज्ञान होय, ता पाछे तापक्लेश समजे. ओर प्रथम कठिन उपाय कहेतो शरण आयवेमें जीवको बड़ो सन्देह पड़े. तातें क्रम-क्रमसों सेवा-स्मरण तथा लीलाकी भावना ताप-स्नेह बढ़ावे. ओर अनन्यभगवदीयको अपनों हितकारी जानें. ओर पुष्टिमार्गसों विपरीतधर्म बतावें ताकों अपनों शत्रु जाननों. तातें प्रेमदसावारेकों संग करनों ओर सत्संग बिना या कालमें दुःसंग बहुत मिलत हे. सो या करिके भगवद्धर्मको नाश होय हे सो या काल विषे अनेक प्रकारके प्रतिबन्ध आयके पड़त हें. तासों सत्संग होय तो भगवद्धर्म बढ़े नहींतो अन्याश्रय होय जाय."

या प्रकार श्रीगोकुलनाथजी आज्ञा किये हें.

(२४ वचनामृत.१९).

(२०)

अब ओरहू श्रीगोकुलनाथजी आज्ञा करत हें जो:—

भगवदीयको मन लगायके भगवत्सेवा करनी; ओर, फिर राजभोग पाछें एकान्तमें दोय-चार घड़ी, जैसो सौकर्य होय तितनी मानसी सेवा करनी. ओर नखते शिख पर्यन्त सगरे शृंगारको ध्यान करनों. सो न्हायके मन्दिरमें जायकें मानसी रीतिसों ऋतु सामग्री करि आरोगावनो सो राजभोग पर्यन्त सब भावना करें ता पाछें महाप्रसाद लेय. ओर वैष्णव आयो होय तो प्रथम उनको महाप्रसाद लिवावे ता पाछें मानसी करि आप महाप्रसाद लेय या भावसों उत्थापनसों सैनपर्यन्त भावना करनी. ओर पाछे कुञ्जकी भावना करनी सो अत्यन्त दुर्लभ हे ओर अपनों मन लौकिक आसक्तिमें होय तो न करनी. ओर यह कहे जो श्रीमहाप्रभुजी आपनों दास जानिके कृपा करेंगे. या प्रकारकी भावना करनी तातें भावनामें प्रथम प्रभुनके शृंगारमें मन लगावे, ओर जन्म-जन्मकी अविद्या करिकें भगवत्स्वरूपमें मन लागत नाहिं सो शृंगारकी तो अद्भुत छबि देखिकें मनको शृंगार करे तब कार्य होय.

तब कल्याणभट्ट प्रश्न कियो जो "महाराज! शृंगारको कछु वर्णन करिये, सो अब श्रीगोकुलनाथजी शृंगारको वर्णन करत हें जो:—

प्रथम तो श्रीठाकुरजीके चरणारविन्दमें मन लगावे. सो परम कोमल सुकुमार तिनमें सोलह चिन्ह हें. ओर प्रथम बड़के पत्र आरक्त होय तेसे,

वामचरण पुष्टि–दक्षिणचरण मर्यादा, तिनमें दश नखनकी कान्ति चन्द्रमावत् तापहारि. तिनमें नुपुर आदि नखभूषन जड़ाउ, ताके उपर जेहरि पायल, झांझर, कड़ा, सांकल आदि. ताके ऊपर गुल्फ सुन्दर तापे घूंघरू. ता ऊपर जंघा कदलीस्थंभवत्. ओर कटि केसरिवत् पतरी, तापर किंकिणी तथा पीताम्बर, धोती, सूथन ओर त्रिवली. ओर हृदय विशाल ताऊपर चौकी, पदक, धुकधुकी, चम्पाकली बंधी हे; ओर, वैजयन्ती माला, मोतीनकी माला, कदम्बके कुसुमनकी माला. तापर कंठसरी, सांकलां, पगलां. भुजमें बाजूबन्ध जड़ाऊ फोंदना, श्यामवलय, पोहोंची, कंकण, हस्तफूल, नखावली १०. ओर श्रीहस्त तामें लाल मुरली, तापर नग जड़ाउ. ताके पास चिबुक हीराको आभूषण. ओर अधर नीचे मन्दहास्य कान्ति कोटि बिजलीवत्. या भांति आगे आरक्त मुख. ओर नासिकामें बेसरको मोती. दोउ नेत्रमें लावण्य कटाक्ष, पांच प्रकारकी चितवनि, मनहर, दोउ भृकुटी काम धनुषवत्. सुन्दर भालपर कुंकुम, तथा केसर–कस्तूरीको तिलक भोंहपर. कुन्डल मकराकृत / मयूराकृत / कर्णफूल, ऊपर कणिर्कार लसत हे. मस्तकऊपर मुकुट / कुलह / टिपारो / ग्वा-लपगा. भांति–भांतिके रंगनकी जड़ाउ मणिमाला गुंजा. ओर चरणारविन्दमें तुलसीदल दोऊ ओर. दामिनीवत् ओर भक्त अनेक प्रकारकी लीला करें या प्रकार मनमें स्वरूपासक्तिको बारंबार विचार करें. जब सहजमें ध्यान हृदेमेंते न टरे तब लीलाकी

भावना होय. ओर नाना प्रकारकी सामग्री तथा कुञ्जके उत्सवादिककी सामग्री करें— भावना करें या प्रकार मानसी करि दण्डौत करे. तब प्रभु कृपा करिके हृदयमें पधारें. तब लौकिकमेंते देह छूटि अलौकिकमें लगें. तब रोमांचित होयकें रुदन करें. या प्रकार प्रेमकी दशा होय, ताके भाग्यको पार नाहिं.''

सो यह प्रकार श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्टसों आज्ञा किये हैं.

(२४ वचनामृत.२०).

(२१)

अब श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति एक्कीसमो वचनामृत कहत हें जो :—

वैष्णव संयोगको स्मरण करि आनन्द पावे कबहु विरह करि दीनभावकों प्राप्त होय, यह दैन्य फलरूप हे. दैन्यतें सन्तोष होय, तातें श्रीठाकुरजी अति प्रसन्न होंय ओर जब निःसाधन होय तब यह विचारिये—

चित्तेन दुष्टो वचसापि दुष्टः
कायेन दुष्टः क्रिययापि दुष्टः।
ज्ञानेन दुष्टो भजनेन दुष्टो
ममापराधः कतिधा विचार्यः॥

या प्रकार अपनेकों, समाधान करि, हीन जानि

मनमें प्रभुके प्रति दासभाव राखें; ओर, अपने स्वरूपको बारंबार विचारनों जो 'में कोन गिनतीमें हूं, ओर मेरी देह मलमूत्रसों भरी हें. ओर जीतनी वस्तु सब खोटी कही हें तितनी मेरी देहमें हें. सो ओर तो में कहां देखूं सो हाड़-मांस-चर्म-थूंककी भरी हें. अनेक द्वार करिकें मल बहत हे. एसो जो में महादुष्ट अज्ञानी हूं अनेक दुःख संसारमें भोगत हूं. सो एसो जो में तो मोकुं संसारमें कहुं ठिकानो नाहिं. ओर श्रीआचार्यजी परम दयाल हें सो मोसे पतितकों शरण लीयो हे सो में पुष्टिमार्गमें शरण आयो. नातर मोको तो नरकमें हुं ठिकानो नहीं हतो. तातें श्रीआचार्यजीने परम कृपा करिके शरण लेके अपनो पूर्णपुरुषोत्तमको संबंध करायो हे. अपनो कर्तव्य हे जो दृढ़ता करिकें श्रीपुरुषोत्तमके चरणारविन्दमें मन लगायकें रहनो. ओर कोटानकोटि जुग भ्रमत महा दुखित भयो हूं, ताते संसारमेंतें मन काढ़िके प्रभुनके चरणारविन्दमें मन लगाऊं, या प्रकार अपनें छिन-छिनमें सम्हारे तब दीनता उत्पन्न होय. ओर सब वस्तुमें भगवदइच्छा जाने, ओर उद्यम होय सो करे, ओर जामें धर्म जाय सो न करनो, ओर धर्म गयो सो सब गयो, ओर सगरो स्वार्थ गयो. ओर अपनी खरी मजूरी होय ताको श्रीठाकुरजी अंगीकार करत हे, यह अपने मनमें निश्चय करे. जो कोई श्रीठाकुरजीको नाम लैकें वस्तु लावे ओर श्रीठाकुरजीकों समर्पे नहीं ओर तामेंते खानपान

करे तो पातकी होय ओर श्रीठाकुरजीकी वस्तु अपनें खानपानमें लावे ओर भगवद्धर्म बेचिके लावे तो सगरो भगवद्धर्म नष्ट होइ जाय. एसें ही कीर्तन करिके देह निर्वाह चलावे ओर भगवद्धर्मको प्रगट करि अपनो निर्वाह चलावे ओर गृहको पोषन करे तो ताकों कछु भगवद्धर्म फल न होय. ओर संसारमें संसारीकी रीति होय तेसे चले ओर काहूंको बुरोहु न करे ओर लोग जाने तो केवल संसारी हे जहां एतन्मार्गीय वैष्णव मिलें तब भगवद्धर्मकी चर्चा-वार्ता करे. ओर वैष्णवके आगे अपनी बड़ाई तथा अपनो पुरुषार्थ न करे जो 'में ही कमात हूं तातें मेरो गृहस्थाश्रम चलत हे', ऐसे विचारे जो प्रभु बड़े हें सो सबकों पालन-पोषन करत हें. ज्ञानमार्गमें साधनदशामें कष्ट-त्याग दृढ़ होय तब उद्धार होय; ओर, पुष्टिमार्गमें या प्रकार चले तो गृहस्थीको उद्धार होय हे. सो संसारीके उद्धारार्थ यह मार्ग हे. तामें त्यागी विवेकी होय तो कहा कहेनो! यह ज्ञान तादृशी भगवदीयतें होय याको दूसरो प्रकार नाहिं.''

या प्रकार श्रीगोकुलनाथजी वैष्णवको आज्ञा किये हें.

(२४ वचनामृत.२१).

(२२)

अब ओरहु श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति आज्ञा करत हें जो :—

वैष्णवकों मिथ्याभाषण सर्वथा नहीं करनो; क्योंकि, झूंठ बराबर पाप नहीं हें. जो राजा युधिष्ठिरने इतनो कह्यो जो ''नरो वा कुञ्जरो वा अश्वत्थामा मृतो'' सो इतने ही पापते नर्कको दर्शन करनों पर्यो. सो मनमें बहुत दु:ख पायो. सो तामें पड़े ताके दु:खको तो पार नाहिं तातें मिथ्याभाषणको महापाप हे. ओर श्रीठाकुरजीकी रसोई जाके ताके हाथसों न करावनी. अपने हाथसों पवित्रतासों करनी ओर रसोईको कार्य दु:खरूप न जाननों जो 'मोकों श्रम होयगो, कैसे करूं?, धुंआ नहीं सह्यो जात हे!' ओर या मार्गमें तो श्रीठाकरजीकी रसोईकी टहल परम उत्तम हे. जहां तांइ अपनो शरीर चले तहां तांइ ओरके हाथ रसोई न करावे. सेवा शृंगार तो करावे परन्तु रसोई तो अपने हाथसों ही करे. ओर रसोईकी अपरस न्यारी राखे ताकों 'उत्तम-भगवदीय' कहिये, ओर शरीर न चले तो अवश्य आय पड़े तो ओरके हाथ करावें परन्तु मनमें ताप राखे ओर रसोई करिकें आपही खायके न बैठि रहे. यासूं दोष लागे. तामें प्रथम वैष्णवको लिवावे ता पाछे आप लेय. ओर वैष्णवको मुख्य करि दासभाव राखे; ओर, दास तो ताकों कहिये जो वैष्णवकी झूंठिन खाय. ओर मार्गकी तो यह मर्यादा हे जो श्रीठाकुरजीकी तथा श्रीवल्लभकुलकी झूंठिन खाय. इन बिना ओरकी खाय तो भ्रष्ट होय जाय या धर्मसों ऊपर वैष्णवकी झूंठिन लैवेकी

कही ताको निराकरण करत हें जो मुख्य तो ब्रजभक्तको स्वरूप गाय हे सो गायकों प्रथम महाप्रसाद खवावें ओर वैष्णवको खवावें, ता पाछें यह सगरो महाप्रसाद वैष्णवको झूठिन भयो. ओर वैष्णवकी सामर्थ्य न होय ओर अपनों कार्य जेसे-तेसे चलावत होय तो गायको भाग तो अवश्य देइ. ओर यह रसोई करे हे, तब गाय पृथ्वी मनुष्य देवता पितृ ये सब आशा करें हें. सो सब गायको ग्रास काढे तब ये सघरे तृप्त होय जांय. तातें गायको भाग अवश्य काढनों जो यह वैष्णव ओर मनुष्यमात्र कों धर्म हे. ओर श्रीठाकुरजीकी सामिग्रीमें अपनो मन चलावनो नहीं ओर कदाचित् चलावे तो महापापी होय. ओर श्रीठाकुरजी आरोगे नहीं ओर सिद्ध सामिग्री काहुको दिखावनी नहीं. ओर श्रीठाकुरजीकेलिये फल फूल सामिग्री करी होय तो तामेंतें, स्त्री-पुत्रादिककों काहुकों दिखावनी नहीं जो लौकिक प्रीतितें काहुको देय ओर लेय तो बर्हिमुख हो जाय ओर याकों धर्म जाय, श्रीठाकुरजी अंगीकार न करें. तातें भगवत्सेवा हे सो गोप्य हे सो काहुकों जतावे नहीं. जो सेवा प्रगट करि अपनी प्रतिष्ठा बढ़ावे ताकों 'पाखण्डी' कहिये, सो ताकी सेवामें कछु पुष्टिमार्गका फल नाहिं, ओर पाखण्ड करिवेवारेके हृदयमें लौकिक आवेश आवे, सो लौकिक आवेशतें बहिर्मुख होय. ओर सेवामें प्रतिबन्ध परे. जो पाखण्डको सार मूल लोभ हे सो जब लोभ छूटे तब

पाखण्ड न होय; ओर, लोभके लिये जगतमें पाखण्ड करत हे सो वह पाखण्डी होय. ताको अन्याश्रय होय जाय, ताकरिके लोभके वशतें मान(ज्ञान)-विवेकको फल जात रहे. सो एसे लोभी पाखण्डीके हृदयमें श्रीठाकुरजी कबहुं न बिराजे! तातें सेवा थोरी ही करे, यथाशक्ति करे, ताको कछु बाधक नाहिं. सो थोरेही भगवद्धर्मसों वाके सघरे कार्य सिद्धि होय जांय ओर बहुत करे ओर पाखण्ड सहित होय तो भगवद्धर्म न बढ़े. तातें अलौकिक रीतसों सेवा करे सो श्रीठाकुरजीके जानिवेसूं कार्य होयगो जो लोगनके जानेतें कछु सिद्ध होय नहीं. ओर वैष्णवको यह धर्म हे जो उत्तम सामग्री होय सो श्रीठाकुरजीकों समर्पे ओर अपने पास द्रव्य न होय तो मनमें ताप करिके कहे जो 'यह तो प्रभुनके लायक हे ओर जहां तांई बने तहां तांई उत्तम सामग्री तथा नौतम वस्त्र ओर फलफूल थोरोहु बने तो अवश्य लावनों. सो महेंगे-सेंगेको विचार नाहिं करनों. श्रीठाकुरजीकुं तो स्नेह अत्यन्त प्रिय हे सो श्रीठाकुरजीको उत्तम वस्तु जहां तांई बने तहां तांई अंगीकार करावनी. ओर श्रीठाकुरजीकों सुगन्धादिक अत्यन्त प्रिय हे सो यथाशक्ति समर्पे. ओर सुगन्ध नित्य न बने तो उत्सवमें समर्पे. द्रव्यके अभावसों श्रुतिदेवने मृतिकामें पानी डारके सुगन्धके भावसों प्रभुको समर्प्यो हुतो. सो ऐसे भावतें सघरी बात सिद्ध

होय. ओर श्रीठाकुरजीकों तुलसी अत्यन्त प्रिय हे सो श्रीठाकुरजीके चरणारविन्दमें नित्य-नेमसों विधिपूर्वक समर्पनी. ओर तुलसी समर्पती बिरियां गद्यको पाठ करनों. सो श्रीठाकुरजीके चरणारविन्दको सम्बन्ध श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीद्वारा भयो हे तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकों सर्वोपरि जानें; ओर, तुलसी हे सो वृन्दाको स्वरूप हे–पतिव्रता हे. ओर मध्यतुलसीके बीज जो हें, तातें दृढ़ सम्बन्ध भयो जाननो तातें तुलसी चरणनमें समर्पनो. तब जा दिन जा समय ब्रह्मसम्बन्ध भयो ता समय अपने गुरुके सन्मुख जो श्रीठाकुरजी हें तिनकों स्वरूप अपने श्रीठाकुरजीमें जानि समर्पे. काहेतें? जो यह चरणारविन्दको दृढ़ सम्बन्ध भयो हे सो चरणस्पर्श करेते प्रीति बढ़े ओर प्रभुके चरणारविन्दमें भक्ति हे, सो भक्तिकी वृद्धि होय. ओर या प्रकार विचारे जो कहां भक्तिरूपी चरणारविन्द अलौकिक ओर मेरो हस्त लौकिक! परन्तु श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीकी कृपासें यह पदार्थ प्राप्त भयो हे. ओर प्रभु मोकों चरणस्पर्श करायो हे, तहां पूतनामोक्षमें श्रीआचार्यजी लिखे हें जो ''पूतनाने सोलह हजार बालकनके प्राण लीये सो पूतनाको प्रभुने दुष्टभावतें मोक्ष कीयो'' बालकहु भक्तभावसों श्रीठाकुरजीके हृदयमें रहे सो श्रीठाकुरजीने यह विचारी जो सोलह हजार भक्त हें सो तिनकूं पूतना राक्षसीके संगतें आसुरावेश भयो हे. सो यद्यपि जगदीश श्रीठाकुरजीके हृदयमें हें तोहु मिट्यो

नहीं; तातें, भक्तिरूप चरणारविन्दको सम्बन्ध होय तब आसुरावेश मिटे. सो यह विचारिकें ब्रह्माण्डघाटकी मृतिका खाइ बालचरित्र दिखाये. सो उन भक्तनके अर्थ आप मुखमें माटी खाये तब ये ऊपरको चरित्र दिखाय, ब्रजके बालक तथा वेदरूप श्रीबलदेवजी इननें श्रीयशोदाजीतें कह्यो जो "श्रीठाकुरजीने मृतिका खाई हे", इतनी सुनिके श्रीयशोदाजी श्रीठाकुरजीके पास आइ ओर डरपायके कही जो "श्रीठाकुरजी! सांची कहो जो तुमने माटी क्यों खाई?" तब श्रीठाकुरजीने कह्यो जो "मैया मैंने माटी नहीं खाई हे" सो यह लीला करि अपनी पुरुषोत्तमता बताई सो श्रीबलदेवजी ईश्वर हें, तोहु जाने नांहि! जो जीतनो प्रकार श्रीठाकुरजी जतावें तितनो जानें. तब श्रीयशोदाजीकों मुख खोलि ब्रह्माण्ड दिखायें सो यह मृतिकाको प्रसंग अत्यन्त गोप्य हे. सो या प्रकार चरणामृत देकें सोलह हजार बालक पूतनाके शुद्ध किये. ता पाछें व्रतचर्या प्रसंगमें चीरहरण लीला कीनीं सो चीर दैकें चीरद्वारा इनमें पुंभावको स्थापन किये. तब रासकी अखण्डरात्रि देखिवेकी योग्यता भई. सो अलौकिकरात्रि दिखाये. ओर वरदान दिये जो शरद्में रासलीलामें दान होयगो. काहेतें जो चरणारविन्दके सम्बन्धतें भक्ति सिद्ध भई हे. तातें चरणामृत लेनों ओर तुलसी चरणारविन्दपें समर्पनी; ओर, चरणस्पर्श करनो. या प्रकार नियम राखे तब भक्ति

बढ़े, तब पुष्टिमार्गमें फलकी प्राप्ति होय. ओर तुलसी हे सो जितनो भगवद्धर्ममें प्रतिबन्ध हे तितनों सब दूर करे, अलौकिक देहकी दाता हे. ओर तुलसीको अलौकिक स्वरूप कहें हे जो पुष्टिमार्गमें मुख्य श्रीस्वामिनीजी बिना रञ्चक फलकी प्राप्ति नाहीं हे सो तुलसी स्वामिनीजीके श्रीअंगकी गन्ध हे, तातें श्रीठाकुरजीकों अत्यन्त प्रिय हे सो—

प्रियांगगन्धसुरभितुलसी चरणप्रिये!।
समर्पयाम्यहं देहि हरेर् देहम् अलौकिकम्॥१॥

सो या भांतिसों तुलसी बड़ो(ड़ी) पदार्थ हे. ओर पतिव्रता पार्वती, जानकी इत्यादिकनकी आधिदैविक पतिव्रता हे. सो गोविन्दस्वामी गाये हे—

श्रीअंग प्रभृति जेती जरा जुवती
बार फेरि डारों तेरे रूपपर॥१॥

या प्रकार अलौकिक भाव जानि तुलसी समर्पे ओर वृन्दारूप तो मर्यादामार्गकी रीतिसों सब जगतमें दिखाये हें ओर जा दिन श्रीठाकुरजीकी सेवा चरणस्पर्श न बने ता दिनको जाननों जो आज दिन मिथ्या गयो. सो यह भाव अत्यन्त दुर्लभ हे. ओर दासभाव राखिकें प्रभुकी टहल करनी तातें प्रभु प्रसन्न होय. ओर स्नेह तो अत्यन्त दुर्लभ हे ओर स्नेह बिना सघरी क्रिया वृथा

जाननी. एसो स्नेह बड़ो पदार्थ हे सो या प्रकारसों भगवत्सेवाको नियम—अपने पुष्टिमार्गको धर्म भगवदीयसो मिलिकें पालनो. ओर भगवद्धर्मतें श्रीठाकुरजीमें स्नेह होय ओर दु:संगमें अपनों धर्म जायवेमें भय होय ओर सत्संगते सदा भक्ति होय. ओर धर्म गयो तब सब पापरूपक भयो. तातें भगवदीयतें प्रीति सहित मिलाप राखें तातें याको कल्याण होय.

या प्रकार श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति वैष्णवकों शिक्षा दिये हें.

(२४ वचनामृत.२२).

(२३)

अब ओरहु श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति कहत हें जो :—

वैष्णवको सखड़ी-अनसखड़ीको विचार राखनों ओर न समजत होय तो पुष्टिमार्गीय भगवदीयसों रीति भांति पूछनी. ओर वैष्णवको सामग्रीमें ओर महाप्रसादमें विचार राखनों जो सामग्रीमें श्रीठाकुरजीकी सत्ता जाननी—महाप्रसादमें वैष्णवकी सत्ता जाननी, अपनी सत्ता न जाननी. सामग्रीकी सेवा पवित्र होय, खासा जलसों हाथ धोय विवेक-विचार-सहित स्पर्श करे. अच्छो भावनीक वैष्णव होय ताके हाथ सिद्ध सामग्री दीवावनी तथा टहल करवावनो ओर जहां तांई बने तहां तांइ सिद्ध सामग्रीको कार्य आपुही करनों ओर जो शाकादिककी सामग्री

बजारतें मंगावें सो नामधारी बिना काहुपे न मंगावे. ओर जो बनेसो छोटी-मोटी सेवा आपुही करे. ओर कुटुम्बमेंतें जाकी अत्यन्त प्रीति होय ताके पास करावे. ओर आप पवित्रतामें रहे ओर पवित्र ही कार्य करे. ओर रसोई शुद्ध पोतके राखे ओर राजभोग पाछें पात्रादिक मांजिके धरे. ओर सखड़ीमें बड़ी पवित्रता राखें सो एक एक से छुए न जांय. ओर अपवित्रतासों बुद्धिकी हीनता होय, तातें मलिनतासों न रहनों. ओर बहुत मैले वस्त्र न राखने, सो काहेते? जो वैष्णवके पास वैष्णव बैठे तब भगवच्चर्चा-वार्ता करे तहां सर्वथा प्रभु पधारें सो तिनकों उन वस्त्रनमेंसों बास आवे सो यह भाव जानिकें वस्त्र उज्वल राखे. ओर भगवन्मन्दिरमें आपुकों जानों परे तब ग्लानि आवे, तातें फटे-मोटेकी कछु चिन्ता नहीं. अपने देहके अर्थ जेसो बने तेसो पहरे परन्तु बहुत मैलो न राखे. ओर अपने देहके अर्थ काहुके दिखायवेके अर्थ आछो कपड़ा नाहिं पहिरे, यह दासको धर्म हे. ओर सूकर, शियाल, गर्दभ, कुत्ता, धोबी, नीचजाति, चाण्डाल, भंगी, चमार, आसुरी, सूतकी, रजस्वला, छापकी, (गरोली) सर्प, इत्यादिकनको छुवे तो तत्काल न्हाय डारे. ओर छीवेके स्पर्शतें दिनमें ही न्हाय, रात्रिको छूयो रात्रिमें न्हाय, यह वेद-स्मृति-शास्त्रमें कह्यो हे. ओर महाप्रसाद उत्तम ठोरको लेय. या प्रकार आचार-विचारसूं रहे. ओर या प्रकार पुष्टिमार्गकी रीतिमें न समजें तो भगवदीय

वैष्णवतें पूछ्यों चाहिये. ओर उत्सवादिकको लोप न करनो; क्योंकि, जब उत्सव आवत हे, तब श्रीठाकुरजीकों परम आनन्द होत हे जो फलानों उत्सव आवत हे. ओर श्रीठाकुरजीको उत्सव न करावे तो श्रीठाकुरजी अप्रसन्न होय जांय. तातें उत्सव यथाशक्ति सर्वथा करनों सो विधिपूर्वक करनों. ओर मनमें दु:ख पायके न करनो ओर काहुके आगे अपनी बड़ाई न करनी, जो मैने उत्सव कियो. ओर लौकिक-वैदिक कार्य आय पड़े तोहु उत्सव टारनो नहीं. अपने ओर कार्य आय पड़े तो वैष्णवके घर तथा अपने घरके वैष्णव पास करावे. सो लौकिक कार्य-अर्थ अलौकिक श्रीठाकुरजीको उत्सव टारे तो श्रीठाकुरजी कुढ़ें ओर जीवके ऊपर अप्रसन्न होंय. तातें अलौकिक कार्यमें मन राखे ओर लौकिक-वैदिक आवश्यक होय सो करे. ओर पुत्रादिकको व्याह करे तब मर्यादी होय तहां तिनके घर पुष्टिमार्गकी रीतिसों महाप्रसाद लेय. ओर अन्यमार्गकी रीति होय तो महाप्रसाद न लेनो ओर लौकिक कार्य करनों होय तो श्रीठाकुरजीकों वस्त्र-सामग्री पहले करनी; ओर, लौकिकको कार्य पाछें करनों. ओर नात जिमामनी होय तो प्रथम श्रीठाकुरजीकी सामग्री करे, पाछें श्रीठाकुरजीकों भोग धरें, ता पाछें वैष्णवकों लिवावें ओर वैष्णवको लिवाये पाछे श्रीनाथजीकी तथा गुरुनकी यथाशक्ति भेट काढ़े. ओर श्राद्धादिकमें वैष्णवको न लिवावे. ओर सदा जाके घर लेत

होय सो ता भांतिसों लिवावें. ओर लौकिकभावतें ब्राह्मण ओर जाति कों लिवावे. ओर अलौकिक कार्यमें वैष्णवकों करे. तहां ओरके करेको प्रयोजन नहीं. ओर लौकिकमें कोई जातिकों बुरो माने तो वाकों प्रसाद दैके प्रसन्न करें. तातें अपने मार्गकी निंदा न करावे, सो काहेतें? सो सुदृढ़ भक्ति भई नाहीं हे तातें अपने मनमें निंदाते दु:ख होय. दृढ़भक्तिवारेको तो कछु लौकिक-वैदिक सुहाय नहीं. वाकों तो केवल अलौकिकहीतें काम हे. या प्रकारसो रहनों ओर जहां तांई भक्ति दृढ़ नहीं भई हे, तहां तांई यह जाने जो मेरी भक्तिमें कोई प्रतिबन्ध न करे. ओर लौकिक-वैदिक करे तातें श्रीठाकुरजीकी सेवा निर्विघ्नतासों करें. ओर मनमें खेद होय सो न करे. ओर पुष्टिमार्गीयसों कोई बातको अन्तराय ना राखे. ओर कपट छल भगवदीय सों न राखें. ओर लौकिक-वैदिकको कार्य हीन जानें. सो यह पुष्टिमार्गको रीति सर्वोपरि जानें. ओर इन इन्द्रियनके विषयादिकनतें श्रीठाकुरजीको आवेश जातो रहे ओर कहे हें ''विषयाक्रान्तदेहानां नावेशः सर्वथा हरेः.'' सो या प्रकार करिकें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहे हें सो सेवाके बराबर धर्म नहीं. सो वैष्णवकों बहुत कठिन हे. ओर वैष्णवको विवेक-विचारसों सर्व कार्य करनों. देश-काल-समयको विचार राखनों. बुरेके निकट न जानों ओर वासुं संभाषणहुं न करनों. सेवा बनेको उत्तम काल जाननों ओर

ब्रजभूमिकों उत्तमतें उत्तम भूमि जाननो जो जहां श्रीपुरुषोत्तमकी नित्यलीला स्थिति हे. ओर रात्रिको शयन करनो तब प्रात:कालकी सेवाको स्मरण करनों. ओर श्रीठाकुरजीके श्रीमहाप्रभुजीके कीर्तन करि सोवनो. ओर कीर्तन न आवे तो श्रीमहाप्रभुजीको, श्रीगुसांईजीको तथा गुरुनको स्मरण करिकें सोवनो. सो सबनके नामतें सघरो दिन खोटो-खरो बोल्यो होय तो सब सुखरूप होय जाय. जेसे रात्रिको दूध लियेतें सगरे दिनको प्रसाद दूधवत् गुन करे. सोवत समय चरणामृत लेके सोवे तो वाको दु:स्वप्न नहीं आवे. ओर नींद तो मृतक बराबर हे, तातें श्वास आवे तथा नहीं आवे, तातें चरणामृतकों सम्बन्ध मुखमें बन्यो रहे तो सर्वथा दुर्गति न पावें. या प्रकारसों वैष्णव या कालमें सावधान होयकें रहे तब बचे.

या प्रकार श्रीगोकुलनाथजी कल्याणभट्ट प्रति कहे हें.

(२४ वचनामृत २३)

(२४)

अब श्रीगोकुलनाथजी चौबीसमों वचनामृत कहत हें जो :—

वैष्णवकों यह भय राखनो जो मेरी भगवत्सेवामें अन्तराय न होय, यह भाव राखनों. ओर सेवाके अर्थ लौकिक कुटुम्बको, परोसी, राजा तथा देश-काल को सघरो दु:ख सहनों ओर जाननों जो यह

दु:ख हे सो तो देहसम्बन्धी हे. सो कोई कहा करेगो ओर भगवत्सेवा मोकूं चाहिये ओर दु:खसुख तो जगतमें जहां जांय तहां याकी सिद्धि हे परन्तु भगवत्सेवा तो बहुत दुर्लभ हे. जब प्रभु अत्यन्त कृपा करें तब भगवदीयको ओर सेवाको संयोग बने. ओर अपने मनमें यह जाने जो जहांतांई यह देह हे तहांतांई यह दु:ख हे. ओर लौकिक दु:ख-सुख मेरे संग नाहीं हे. तातें दु:ख-सुख पायके सहन करे ओर कहे जो यह सेवा मेरे जन्म-जन्मको कल्याण करत हे तातें या जन्ममें दु:ख भयो तो कहा परन्तु सेवा तो बनत हे! ओर लौकिक-वैदिककेलिये आपुन देश-देशमें कितनों दु:ख सहत हें सो तो तुच्छ पदार्थ हे ओर यहां अलौकिक भगवत्सेवा हे. ताके अर्थ जो दु:ख पावें तो आनन्द पायकें सहनों ओर भगवत्सेवा मन लगायके करनीं. ओर श्रीठाकुरजीकी सामग्री तथा नेग बांधे सो नेग रंचकहु घटावे नहीं. तातें अपनी सामर्थ्य देखिके नेग बांधे ओर नेग बांधे न करे तो प्रभु नेग बिना दु:ख पावें यह भक्तिमार्गमें नेगकी प्रभु आश करत हें. सो लौकिक द्रष्टान्ततें जाननों: जेसे कोई वैष्णवकों महाप्रसाद लिवावे सों वाको एक दिन घटतो धरें तो वह भूखो रहें. ता भावतें विचारिकें नेग बांधनो. ओर जो कोई वैष्णव सेवामें चतुर होय तो वाको सेवामें राखनों ओर काहुकों सामग्री आछी आवे, कोई बीड़ी सुगन्ध, अत्तर, फूलेल,

अरगजा, चोवा ओर रीति-भांतिकों जाने वाको सेवामें राखे. ओर कोई कुल्हे टिपारो वस्त्रन कों बांधि जानें तो तिनसों करावे. सो या प्रकारसों प्रीतिपूर्वक सेवा करे. ओर जामें गुण बहुत होय ओर प्रीति रंचकहु न राखे, तासूं कछु न करावे. ओर थोरो गुण होय प्रीतितें करे तासों सेवा करावें. अपनेकों कछु गुण आवत होंय ओर कोई वैष्णव श्रद्धापूर्वक पूछे तो कहें परन्तु ठौर-ठौर आपते न कहत डोले. ओर अपने गुनको अभिमान न करे. प्रीतिपूर्वक वैष्णवको बतावनो ओर आपतें नयो होय तो वाको आछो जाननो. ओर आपुनतें प्रथम हुए वैष्णवकी कानि राखनी. ओर जाने जो ''ये वैष्णव हे ओर मोतें बड़ो बड़भागी हे; ओर, प्रभुने इनको बालपनेते अंगीकार कियो हे'' ओर भगवद्धर्ममें छोटो-बड़ो न जाने. कृपाकूं देखें ओर काहुकों शरण आवत ही आछी दिशा होत हे; ओर, काहुको जन्म व्यतीत होय जाय तोहूं कछु न समजें. तातें या मार्गमें बड़े-छोटेको प्रमान नाहिं. जो या मार्गमें तो कृपाहीको विचार हे. ओर पुष्टिमार्गमें शरण आवे ताकों सुजाति जाननो. ओरतें अपनो धर्म गोप्य राखनो. ओर जो वस्तु पुष्टिमार्गमें अंगीकार कीनी हे ताहीको समर्पे, सोइ महाप्रसाद लेय. ओर तरबूजा गाजर इत्यादिक निषिद्ध हें, ओर वेदमेंहु वर्जित हें, तातें कबहु न लेय. ओर शास्त्रमें बेंगनहुं निषिद्ध हे परन्तु या पुष्टिमार्गमें श्रीजगन्नाथजीकी आज्ञातें लीने

हे. तातें बेंगन भोग धरिके लेय ओर लोन डारे शाककूं ओर खीरकुं शास्त्रमें सखड़ीमें कह्यों हे, ताको अनसखड़ीकी रीतिसों करे. शाकादिकमें अग्नितें उतारिके पाछे लोंन डार्यो चाहिये. थोरो बने तो चिन्ता नहीं परन्तु पुष्टिमार्गकी रीतिसों करनों. पुष्टिमार्गकी रीत बहुत बड़ी हे. दूसरेके मार्गकी क्रियासों कछु फल नाहिं हे. सो श्रीगीताजीमें कहे हें

''स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः''

सो परायो धर्म भय उपजावे हे; तातें कछु कार्य न होय ओर अपने पुष्टिमार्गमें रीति प्रमान करे, भले थोरोही करे. ओर श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीको आश्रय करे तो वा धर्मतें प्रभु प्रसन्न होंय, उत्साहसों बने सो करे, काहुकी लौकिक प्रतिष्ठा देखिके वाकी बराबरी न करें. तब वामें श्रीआचार्यजीकी कानितें श्रीठाकुरजी प्रसन्न होंय. ओर प्रभु प्रसन्न न होय तब याको कियो कहा? ताते प्रभुनको तो एक मनहीकी अपेक्षा हे ओर श्रीठाकुरजीके तो कोई बातकी घटनी नाहिं. वैष्णवकों जेसो भाव होय तेसो अंगीकार करें. तेसोइ दान करें. तातें वैष्णव अपनी योग्यता छोड़ि श्रीआचार्यजी महाप्रभुजीको आश्रय करे. ओर लौकिक-वैदिकमें लोकनिष्ठा दिखाय अपनों धर्म गोप्य राखें. तहां लौकिक व्यौहार बने तो करे जानों, तामें जो

भगवदइच्छातें आय प्राप्त होय तामेंते श्रीनाथजीको अंश प्रथम काढ़ीये, ता पाछे, गुरुनको काढ़ीये, दोउ थैली न्यारी करिके धरत जेये. तथा गाममें कोइ वैष्णवके पास धरत जेये. अपने घर द्रव्यको कबहुं न धरिये सो ''कहा जाने कोई समय कैसी कठिनता आय पड़े, तो छिनमें धर्म छूटि जाय, यह द्रव्य कोई समय भगवद्धर्मको नाश करे!'' सो गाममें कोई प्रमाणिक वैष्णव होय ताके घर धरत जेये जब श्रीजीको भेटिया आवे तब तत्काल दे देय. यह न जानें जो मेंही जाऊंगो ओर गाममें गुरु होय तो भेट काढ़ि भेट करि आवे. ओर दूसरे गाममें होंय तो हुंडी करिके पठावे. ओर कोई वैष्णव भरोसेको होय तो वाके हाथ पठावे. सो काहेते? जो या कालमें द्रव्य ओर परस्त्री ए भगवद्धर्म के नाशकर्ता हें. सो श्रीभागवतमें हु कह्यो हे जो काष्ठकी पूतरीको संग न करनों, सो काहेतें? जो चित्रलिखी पूतरीकों देखेतें मनमें विकार होत हे. तातें पराई स्त्रीको सर्वथा त्याग करनों ओर वाको कालरूप जाननों. ओर श्रीगोवर्धननाथजीके तथा अपने गुरुनके दर्शनको सदा सर्वदा आर्ति राखनी. ओर यह न जाननों जो में दोय-चारि बेर होय आयो हुं. सो ज्यों-ज्यों दर्शन करे त्यों-त्यों अधिक ताप करनों. जानें जो दर्शन करवेको फल कृपा करिके दीनों हे. ओर याही भांति श्रीयमुनाजीके जलपानकोहुं ताप राखनों. ओर श्रीगोवर्धननाथजीके टहेलवा ब्रजमें

रहत हें तिनसों दोषभाव न राखनों. जो काहेतें? जो वैदिकशास्त्रमें कहे हें जो यह जगत श्रीठाकुरजीको क्रीड़ामय हे सो सघरो जगत काष्टकी पुतरीवत् हे. सो प्रभु उनको नचावत हें, तेसे नाचत हें, काहुकी दोष न देखें. ओर आछी बात होय सो समुझावे ओर न समझत होंय तो भगवदइच्छा जानें. तातें दोषबुद्धि न राखे क्यों? जो वे ब्रजसम्बन्धी हें सो प्रभुके विचारे बिना प्रभुके गाममें प्रभुके पास केसे रहें! तातें उनको अलौकिक करि जानें, उनकी सेवा टहेल बने सो करें, ओर आप उत्तम स्थलमें अपराधको भय राखे. ओर ठौरके अपराध तो उत्तमस्थलमें गयेतें छूटें ओर उत्तमस्थलको पाप वज्रलेप होय जाय, सो कैसे छूटे, तातें अपराधको सर्वथा भय राखे. सो उत्तमस्थलको भय राखिकें खोटी बात न करें ओर काननतें सुनेहुं नाहिं. तब भाव दृढ़ होय तब प्रभु प्रसन्न होंय. ओर श्रीभागवतके एक-दोय अध्यायको पाठ नित्य करनो. ओर एतन्मार्गके ग्रन्थनकी टीकाको श्रवण करे बिना प्रभुनमें मन लागे नाहिं. सों काहेते? जो ग्रन्थनके बिना पुष्टिमार्गके सिद्धान्तकों न जानें. ओर वैष्णवनके मुखते सुने तब श्रीआचार्यजी तथा श्रीगुसांईजी के पुष्टिमार्गको सिद्धान्त-सेवा-क्रियाको सम्पूर्ण अलौकिकज्ञान होय तब प्रीति बढ़े. ओर जब प्रीति उपजी तब याको सम्पूर्ण कार्य सिद्ध भयो. ओर श्रीसुबोधिनीजी श्रीवल्लभकुल बांचे सो सुने; तथा, निवेदनीके मुखतें सुनें, सो लीलाको भाव

अपने हृदयमें शुद्ध करिके राखे. काहेतें? जो भगवन्माहात्म्य जाने बिना प्रीति न होय. ओर सुने बिना ज्ञान न होय, तातें भगवद्वार्ता श्रवण अवश्य करे. सो श्रीआचार्य महाप्रभुजी नवरत्नमें कहे हें जो हम निवेदन किये हें परन्तु भगवदीयके संग बिना, श्रवण किये बिना ज्ञान न भयो तो प्रीति न होय, तो प्रभु प्रसन्न न होंय. जेसे जगतमें द्रव्यको ज्ञान हे तातें द्रव्यमें प्रीति हे. काहेतें? जो द्रव्यके गुणके ज्ञानते संसारमें सर्वज्ञान होत हे, सो याहीते होत हे. तेसेइ प्रभुनके गुणगानतें प्रभुनको ज्ञान होय, सो सर्वोपरि जानि प्रीति होय. ताते सम्पूर्ण अलौकिककार्य सिद्ध होय. ओर एतन्मार्गके अष्टछापके कीर्तन गावे तथा सुनिवेमें प्रीति राखे. सो काहेते? जो पुष्टिलीलाके दर्शन अष्टछापमें हें ओर अन्यमार्गके कीर्तन जुग-जुगमें अंश कलातें कृष्ण प्रगट होत हें तिनके हें. तातें यह जानिकें अन्यमार्गीय कीर्तन न सुने. अपने ''ठाकुरजीके लीलाके नहीं हें'' यह जानिके कोई अन्यमार्गीय एतन्मार्गके कीर्तन अष्टछापके गावें तिनकोहूं न सुनें ओर जेसे जमुना-जल ओरके पात्रमें होय तो पुष्टिमार्गीय केसे पीवे? जो पीवे तो भ्रष्ट होय जाय. तेसेंई अष्टछापके कीर्तन वैष्णवके मुखते सुनें. ओर श्रीठाकुरजीकी सेवा तथा दर्शन करिकें निकसें, तब पीठ फेरिके बाहिर न निकसे. क्यों जो अपराध पड़े हे. तासों दण्डौत करे ता पाछे ओर ठोर जाय, तब अपराधनिवारण होय.

ओर श्रीठाकुरजीके सन्मुख दण्डौत करे परन्तु श्रीठाकुरजीके पीठ पाछे दण्डौत न करे. तहां बैठेहुं नहीं, सो काहेते? जो श्रीठाकुरजीके पीछे बहिर्मुखता हे, सो याकों होय. सो दामोदरलीलाके प्रसंगमें श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी कहे हें जो श्रीयशोदाजी श्रीठाकुरजीको पकरनको आई तब श्रीठाकुरजी भागे, ज्यों-ज्यों पीठ दीठी, त्यों-त्यों क्रोध बढ्यो ओर स्नेह छूट्यो तब श्रीठाकुरजी बंधे. ताते प्रभुनके सन्मुख बैठनों. ओर अपने गुरुनकों स्वरूप अपने हृदयमें राखि दण्डौत करि विज्ञपित करे जो ''महाराज! मैं संसार समुद्रमें बूड़त हों ताते आप बांह पकरिकें काढ़ो तो निकसि आऊं, ओर मेरी सामर्थ्य तो निकसिवेकी नाहिं हे, सो मैं आपकी शरन हों. आपकी सेवाको चोर हुं. ओर साधन करिकें हीन हूं. तातें आपके शरण बिना, आश्रय बिना ओर उपाय नहीं हे. सो मोंसे पतितको कृपा करिके उद्धार करिवेवारे आपुही हो, सो आप कृपा करोगे, तब प्रभु प्रसन्न होइंगे''. ओर श्रीठाकुरजी अपने घरमें बिराजे हें, तिनमें गुरुभाव-प्रभुभाव दोउ राखे. ओर मुखारविन्दरूप श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी हें, या भावतें पुष्टिमार्गमें भाव ही मुख्य हे, सो लौकिक दृष्टान्ततें कहत हें जो एक देहसम्बन्ध हे—एक भावसम्बन्ध हे. अपनी बेटी हे सो देहसम्बन्धी हे ओर बहु हे सो भावसम्बन्धी. अपनी बेटी देहतें प्रगटी हे परन्तु पराये घर जाय, ओर पाली-पोसी हे, तोहुं

अपने घरकी नांहि हे. ओर बहु, काहुकी बेटी हे, सो भावसम्बन्धते घरमें आई ओर मालिकनी भई. काहेतें? जहां भावसम्बन्ध हे, सो दृढ़ हे. जेसे देहसम्बन्धी यादव तिनको क्षय भयो ओर भावसम्बन्धी जे व्रजभक्त तिनको अपनपो दीयो. तेसेई श्रीआचार्यजी पुष्टिमार्ग प्रकट करिकें जीवनकुं ब्रह्मसम्बन्ध कराये. ओर भावसम्बन्ध दृढ़ करि दियो. सो ऐसो दान भयो हे परन्तु पतिव्रत धर्ममें चले तो प्रभु प्रसन्न होंय. तेसेई वैष्णव साक्षात् श्रीपूर्णपुरुषोत्तमकों अपनें पति जानें ओर इनहीके सेवा-स्मरणमें तन-मन-धन समर्पन करें तो प्रभु प्रसन्न होंय.

सो या प्रकार कृपा करिके श्रीगोकुलनाथजी आप कल्याण भट्टसों कहे हें; ओर, पाछें यह आज्ञा किये हें जो यह पुष्टिमार्गको सिद्धान्त अत्यन्त गोप्य हे सो काहुके आगे मति कहियो. ओर केवल अनन्यभगवदीय होय तासों कहियो, यह हमारी शिक्षा हे. सो तुम जानोगे.

(२४ वचनामृत.२४)

।। अमृतवचनावली ।।

(१/क) ''पाछे श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोर्वधनधरसों पूछें जो ''महाराज! कृष्णदासकी तो देह छूटी... सो हम कौनको अधिकार देके बीगार करें? तासों आपु कहो ताको अधिकारी (ट्रस्टी) करें. तब श्रीगोवर्धननाथजी कहे जो ''हमहु कौंन जीवको बिगार करें? जो कोई अधिकार लेयगो (ट्रस्टी बनेगो) ताको बिगार होयगो! तासों तुम एक काम करों जो अधिकारको दुसाला ले सबके आगे कहो (जो) जाकों अधिकार करनो (ट्रस्टी बननो) होय सो दुसाला ओढो. तब जो आयके कहे ताकों देऊ. सो जाको गिरनो होयगो सो आपु ही आयेगो.''

(श्रीगोवर्धननाथजी, ८४वैष्णव वार्ता, कृष्णदासकी वार्ता, प्रसंग-१०)

(ख) सो एक दिन एक वैष्णवने किसोरीबाईकों कछू सामग्री दीनी हती. तब किसोरीबाईने सिद्ध करिके श्रीठाकुरजीकों भोग समर्प्यो. ता दिन श्रीठाकुरजी आरोगवेकों पधारे नाहीं. तब किसोरीबाई मनमें बहोत खेद करन लागी. तब श्रीठाकोरजी बोले जो तेनें मेरेलिये सामग्री क्यों लीनी? सो हम कैसे आरोगे?

भावप्रकाश : यामें यह जताये जो औरकी सत्ता-सामग्री अपने श्रीठाकोरजीकों आरोगावनी नाहीं. और कछू वैष्णवपेतें ले के श्रीठाकुरजीकों विनियोग न करावनो. सो श्रीठाकुरजी अंगीकार न करें.

(२५२ वै.वार्ता, किसोरीबाई वा.प्र.२)

(२) जो कटोरी (गहने) धरिके सामग्री आई सो तो भोग श्रीठाकुरजी आप ही के द्रव्यकुं आरोगे सो आप ही को भयो. जो श्रीठाकुरजीको द्रव्य खायगो सो मेरो नाहिं अरु मेरो सेवक भगवदीय होयगो सो देवद्रव्य कबहूं न खायगो जो खायगो सो महापतित होयगो. ताते वा प्रसादमेंते भोजन करिवेको अपनो अधिकार न हतो याकेलिए गोअनूकों खवायो अरु श्रीयमुनाजीमें पधरायो. यह सुनिके सब वैष्णव चुप होय रहे.

(**महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य**.घरुवार्ता-३)

(३) ...श्रीआचार्यजीको वैष्णवने आई कही, ''महाराज! श्रीद्वारकानाथजी वैभव

सहित पधारे हैं.'' ता समें श्रीगोपीनाथजी ठाड़े हते! (तब) श्रीगोपीनाथजी कहें ''लक्ष्मी सहित नारायण पधारे हैं!'' तब श्रीआचार्यजी कहे तब श्रीआचार्यजी कहें ''वैभव ठाकुरको देखि के तिहारो मन प्रसन्न भयो है? (तब) श्रीगोपीनाथजी कहे, तिहारो कहाइके श्रीठाकुरजी की वस्तुमें अपनो मन करेगो ताको निरमूल नाश जायगो''. तब श्रीआचार्यजी कहें ''हमारो मारग तो ऐसोई है.''

(**श्रीगोपीनाथप्रभुचरण,** ८४ वैष्णव वार्ता, दामोदरदास संभलवारेकी वार्ता).

(४/क) धनादिकी कामनाकी पूर्तिकेलिये जो शास्त्रविहित श्रवण-कीर्तन-सेवा आदि किये जाते हैं उनको कर्ममार्गीय समझना चाहिये अपनी आजीविका चलानेकेलिये धनोपार्जनके रूपमें जो हैं उनको तो खेती-बाड़ी जैसे व्यवसायकी तरह 'लौकिक कर्म ही कहना चहिये (धर्म-भक्ति सर्वथा नहीं). मलप्रक्षालानार्थ गंगाजलका उपयोग करनेवालेको उसके मलकी सफाईसे अधिक गंगास्नानका फल मिलता नहीं है. इतना ही नहीं ध्यान देनेलायक बात यह है कि गंगा जैसी पवित्र नदिके जलका ऐसा घृणित कार्यकेलिये उपयोग करनेके कारण वह पापी बनता है इसी तरह प्रभुकी सेवा-कथाके माध्यमसे पैसे कमानेवालेको सेवा-कथाका कोई भी (धार्मिक-भक्तिमार्गीय) फल तो प्राप्त नहीं ही होता है प्रत्युत ऐसे अधम आचरणके कारण वह पापका ही भागी होता है.

(**श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरण**. भक्तिहंस)

(४/ख) तब श्रीगुसांईजी आपु कहे : ''जो हम कौनसे जीवको कहें, जो कौनसे जीवको बिगार करें! सुधारनो तो बहोत कठिन है और बिगारनो तो तत्काल है! तासों श्रीगोवर्धनधरको अधिकार (ट्रस्टीपद) कौनकों देय? कौनको बिगार करें?...पाछें श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्धनधरसों पूछें जो ''महाराज! कृष्णदासकी तो देह छूटी... सो हम कौनको अधिकार देके बिगार करें? तासों तुम एक काम करो जो अधिकारको दुसाला ले सबके आगे कहो (जो) जाको अधिकार करनो (ट्रस्टी बननो) होय सो दुसाला ओढ़ो. तब जो आयके कहे ताकों देऊ. सो जाकों गिरनो होयगो सो आपु ही आयेगो''.

(**श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरण,** ८४ वैष्णव वार्ता, कृष्णदासकी वार्ता प्रसंग-१०)

(५) अपने सेव्य-स्वरूपकी सेवा आप ही करनी और उत्सवादि समयानुसार अपने वित्त अनुसार करने वस्त्रभूषण भांति-भांतिके मनोरथ करी सामग्री करनी.

(**श्रीगोकुलनाथप्रभुचरण** २४ वचनामृत)

(६) यहां भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें सेवोपयोगी स्थानके रूपमें निज घरको विधान उपलब्ध होयवेसूं, अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकी सेवा छोड़के दूसरी जगह (अर्थात् हवेलीनूमें, जैसे आजकल, भेट-सामग्री पधराके नित्य या मनोरथनकी झांकी कर लेनो वैष्णवनूने पुष्टिमार्गमें परमधर्म मान लियो है वैसे) भगवत्सेवा करवेवालेनूकुं कभी भक्ति सिद्ध नहीं हो सके हे.

(**श्रीवल्लभात्मज-श्रीबालकृष्णजी,** भक्तिवर्धिनीव्याख्या-२)

(७) जब सन्तदासको सगरो द्रव्य गयो तब श्रीठाकुरजीकी सेवामें मंडान श्रीठाकुरजीके द्रव्यसों राखे और श्रीठाकुरजीके द्रव्यमेंते चौबीस टका पूंजी करि कोडी बेचते. सो श्रीठाकुरजीकी पूंजीमेंते तो कासिदको दियो न जाई सो कमाईको टका दिये. तब इनकी मजूरीको राजभोग न भयो सो महाप्रसाद हू न लियो. टकाके चूनको न्यारो भोग धरते सो राजभोग जानते, महाप्रसाद लेते, ओर नित्यको नेग बहोत श्रीठाकुरजीके द्रव्यसों होतो ताते आपुनी राजभोगकी सेवा सिद्ध न भई (जाने). कासिदको दिये सो नारायणदासको लिखें जो "तुम्हारी प्रभुतातें एक दिन राजभोगको नागा पर्यो जो मेरी सत्ताको भोग न धर्यो!" या प्रकार सन्तदास विवेकधैर्याश्रयको रूप दिखाये. विवेक यह जो श्रीगुसांईजीको हूंडी पठाई-आपुनी सेवा न भई-राजभोगको नागा माने, धैर्य यह जो श्रीठाकुरजीके द्रव्यमेंते खान-पान न किये. आश्रय यह जो मनमें आनन्द पाये-दुःखक्लेश न पाये.

(**श्रीहरिराय महाप्रभु,** भावप्रकाश ८४ वैष्णवनकी वार्ता-७६)

(८) पारिश्रमिकके रूपमें वित्त दे के कोई दूसरेके द्वारा सेवा कराई जावे तो चित्तमें अहंकार तो बढ़े ही है परन्तु ऐसी खरीदी भई सेवासु चित्त भगवानूमें कभी चोंट नहीं सके है. भगवत्सेवार्थ कोई दूसरेसूं पारिश्रमिकके रूपमें धनादिक लिये जावेपे तो, जैसे पंडा-पुरोहितनूकुं यज्ञ-यागादिको फल नहीं मिले है परन्तु यजमाननूकुं ही मिले है वेसे ही सेवाकर्ताकी सेवा निष्फल बन जाय हे शंकाः यजमान जैसे दक्षिणा दे के पुरोहितनूके द्वारा यज्ञयाग करा लेवे है वैसे ही भगवत्सेवा (आजकल जैसे पुष्टिमार्गीय हवेलीनूमें वैष्णवगण गुसांई-मुखिया-भीतरिया-समाधानीकी बटालियनसूं करवा लेवे हें वा तरहःअनुवादक) करा लेवेमें क्या बुराई है? समाधानः या शंकाको ये समाधान जाननो जो कर्ममार्गमें ऐसो करनो विहित होवेसुं पुरोहितनूसूं कर्म सम्पन्न करा लेनो आपत्तिजनक नहीं है. भक्तिमार्गमें, परन्तु, या तरहसूं भगवत्सेवा करा लेवेको कहीं विधान उपलब्ध नहीं होयवेसूं कोई दूसरेकुं धन दे के सेवा करानो अनुचित ही हे. भक्तिमार्गमें तो भगवदुक्त प्रकारसूं (निज घरमें निज परिजननूके सहयोगद्वारा निजी तन-मन-धनसूं ही भगवत्सेवा करनी चहिये.

(**गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरण,** सिद्धान्तमुक्तावली विवृतिप्रकाश-२)

(९) लौकिक अर्थकी इच्छा राखिके जो भगवद्भजनमें प्रवृत्त होय सो सर्वथा क्लेश पावे हे. इतने कछू भेट-सामग्री मिलि जाये ऐसे लाभकेलिये पूजादिकमें प्रवृत्त होय सो पूजादिकमें प्रवृत्त होय सो 'पांखड़ी' ओर 'देवलक' कह्यो जाय हे. तासूं लाभपूजार्थ सिवाय जामें निषेध नहीं हे ऐसी रीतिसूं "मेरो लौकिक सिद्ध होय" ऐसी इच्छासूं जो भजनमें प्रवृत्त भयो होय सो 'लोकार्थी' कह्यो जाय है.

(**नि.ली.गो.श्रीनृसिंहलालजी महाराज,** सिद्धान्तमुक्तावली-टीका श्लोक १६-१७)

(१०) जो श्रीवल्लभकुल हैं वे तो आपुने सेव्यस्वरूपपें कैसो स्नेह राखत हैं जो एक ठौर द्रव्यकी ढेरी करो और दूसरी ठौर श्रीठाकुरजीकों पधरावो तो श्रीवल्लभकुल वा द्रव्यकी ओर देखेंगे हु नाहीं अरु श्रीठाकुरजीकों अतिस्नेहसों पधराय लेंगे. परि जो या कलिको जीव है वाकुं तो द्रव्य बहुत प्रिय है. तासों वो तो श्रीठाकुरजी सन्मुख हु नाहीं देखेगो अरु केवल वैभवकुं देखेगो अरु मोहित होय जायेगो.

(**नि.ली.गो.श्रीमट्टुजी महाराज,** ३२ वचनामृत वचनामृत-५)

(११) श्रीउदयपुर दरबारकुं आशीर्वाद! याके द्वारा सूचित कियो जावे हे कि चल-अचल सम्पत्तिके आर्थिक तथा स्वामित्वकी व्यवस्थाके बारेमें योग्य व्यक्तिनूकी एक सलाहकार समिति नियुक्त कर ली गई हे सेवा आदि

विषयनूमें पुरातन तथा प्रवर्तमान प्रणालिके अनुसार काम कियो जायेगो ओर यदि पुरातन परम्पराको बाध न होतो होयगो ओर समिति कोइ तरहके सुधारकी इच्छा रखती होयगी तो ऐसे सुधार भी स्वीकारे जायेंगे. ओर श्रीठाकुरजीको द्रव्य अपने व्यक्तिगत उपयोगमें नहीं वापर्यो जायेगो जेसी कि परम्परा आज भी हे ही ओर याकुं निभायो जायेगो. तो भी मेरे पूर्वजनूके समयसूं चले आ रहे मेरे स्वामित्वके हक्क वा ही तरह कायम रहेंगे.

(**गोस्वामी तिलकायत नि.ली.गो.श्रीगोवर्धनलालजी महाराज, श्रीनाथद्वारा,** डेक्लेरेशन मिति भाद्रशुक्ला पञ्चमी वि.सं.१९४८=ता.५-९-१८९३)

(१२)...या ही तरह अपने यहां जो सन्मुखभेंट धरी जाय हे वो भी देवद्रव्य होवे हे; और वा सामग्रीकुं काममें नहीं लियो जाय है. श्रीगोकुलनाथजी और श्रीचन्द्रमाजी के घरमें आज भी ये नियम पाल्यो जाय हे. वहां जो सन्मुखभेट आवे हे, वाकुं कीर्तनीया-महावनीया ले जावे हे. वो वल्लभकुलको श्रीयमुनाजीको पंडा हे. दूसरो कोई वाको अनुकरण करे तो वो अनुचित है...हम श्रीनाथजीके सामने जो सन्मुख भेंट धरे हैं वो श्रीमहाप्रभुजीकी पादुकाजीकुं धरें हैं फिर भी वो आभूषणनूमें वापरी जावे है, सामग्रीमें नहीं. सन्मुखभेंट धरवेमें बहोत अनाचार होवे है. या तरहसूं आयो द्रव्य 'देवद्रव्य' बने हे...वाकुं लेवेवालेकी बुद्धि बिगड़े बिना नहीं रहे है.

(**नि.ली.गो.श्रीरणछोड़लालजी महाराज, राजनगर,** वचनामृत.४८४-८७).

(१३) महाराजकुं जो आमदनी वैष्णव आदिनूसूं होवे हे वामेंसूं घरखर्चके रूपमें महाराज ठाकुरजीकी सेवाको खर्चा निभावें हें. ठाकुरजीकेलिये चल या अचल सम्पत्ति अलगसूं निकालके वामेंसूं ठाकुरजीकी सेवाको खर्च निभायो नहीं जावे हे. ठाकुरजीके वैभवको, नेगभोगको, आभूषण-वस्त्र आदिको खर्च महाराज स्वयं अपनी आमदनीके अनुसार निभावे हें... ठाकुरजीके सन्मुख भेंट धरी नहीं जा सके... ठाकुरजीकी भेंट देवमन्दिरमें भेजनी पड़े हे महाराज वा भेंटकुं अपने उपयोगमें ला नहीं सकें.

(**नि.ली.गो.श्रीवागीशलालजी महाराज, अमरेली,** श्रीवागीशलालजीके आम-मुखत्यार:''अमरेलीहवेली व्यक्तिगत है या सार्वजनिक'' मुद्देपर

सन्१९०९-१०में गायकवाडी बड़ौदा राज्यकी कोर्टमें दी गई जुबानी)

(१४) जैसे अपने पूर्वपुरुष स्वयं अपने धर्मके सत्यस्वरूप तथा शुद्धाद्वैतसिद्धान्त कुं पूर्णतया समझके वैष्णवधर्मको यर्थाथ उपदेश लोगनूकुं देते हते; और मध्यवर्ती कालमें जो सम्पत्ति आदिके कारणनूसूं हमने बहोत हद तक छोड़ दिये हें; या कारणसूं अधिकांश लोगनूमें साधारण सेवा और केवल वित्तजा भक्ति की ही रूढ़िके अनुसार जानकारी बच गयी हे.

(**पञ्चमगृहाधीश नि.ली.गो.श्रीदेवकीनन्दनाचार्यजी, कामवन** मुंबईके वैष्णवनूकुं लिखित पत्र:'आश्रय' अप्रिल ८७ के अंकमें प्रकाशित)

(१५) वकील: यदि कोई भी पुष्टिमार्गीय मन्दिरमें वैष्णव श्रीठाकुरजीकी सेवा और नेग-भोग केलिये और श्रीठाकुरजीकी सेवाकुं निभावेकेलिये; भेंट आदि दे के वित्तजा सेवा करते होंय और वा मन्दिरमें तनुजा सेवा भी करते होंय तो वो ''मन्दिर पुष्टिमार्गीय नहीं होवे'' ऐसे आपको कहनो हे?

पू.पा.महाराजश्री: पुष्टिमार्गीय वैष्णवनूकेलिये स्वतन्त्रतया तनुजा या वित्तजा सेवा करवेकी कोई प्रक्रिया नहीं हे. और ऐसी सेवा की जाती होय तो वाकुं साम्प्रदायिक मन्दिर नहीं कह्यो जा सके.

(**नि.ली.गो.श्रीव्रजरत्नलालजी महाराज सुरत** ''नड़ियादकी हवेली वैयक्तिक हे या सार्वजनिक'' विवादमें पुष्टिमार्गके विशेषज्ञ साक्षीके रूपमें दी जुबानी)

(१६) हमारा प्रमुख सिद्धान्त है 'असमर्पित त्याग'. उत्तम उपाय तो यही है कि घरमें जो भी रसोई बने वह प्रभुको भोग धरके बादमें ही महाप्रसाद लिया जाय. ... जहां तक असमर्पितका त्याग नहीं होगा वहां तक बुद्धि अच्छी नहीं हो सकती. सानुभावता कब सिद्ध हो सकती है? जब हमारी बुद्धि निर्मल हो ... आज हम हीरे (घरमें बिराजते सेव्य प्रभु) को परख नहीं सकते. सच्चे हीरेको जौहरी ही परख सकता है. स्थिति क्या है कि हम जूठे हीरेको सच्चा मानकर उसीके पीछे (हवेली-मन्दिरोंमें) दौड़ लगा रहे हैं. श्रीमहाप्रभुजीने तो निधिरूप सच्चा हीरा हमको दिया है. भगवान् गीतामें कहते हैं कि ''दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमेश्वरम्''. भगवान्को पहचाननेकेलिये तो दिव्यता प्राप्त होनी चाहिये. दिव्यता ही आत्मबल है. ... अतः

मेरा तो आप लोगोंसे साग्रह अनुरोध है कि आत्मबल प्राप्त करनेकेलिये अपना कुछ दैनिक नियम बनाईये. षोडशग्रन्थके पाठका नियम लीजीये.

(**द्वितीयगृहाधीश नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी महाराज, इन्दौर-नाथद्वारा,** श्रीमद्वल्लभ अने श्रीहरिरायजी जीवनदर्शन भाग-२, वचनामृत ७, पृष्ठ.१२४)

(१७/क) और जब जनरल पब्लिक ट्रस्ट है तब ठाकुरजीकुं गोस्वामीके सम्बन्धसूं पृथक् करके, ठाकुरजीकुं सब सम्पत्ति अर्पण करके अर्थात् भेंट करके रिलीजिअस एंडॉमेन्टके रूपमें भये वे ट्रस्ट हैं. ऐसी अवस्थामें इन ट्रस्टनूसूं जो नेग-भोग चलायो जावे है, वो देवद्रव्यसूं चलायो जा रह्यो है. देवद्रव्यको उपभोग करनेवालो अन्तमें देवलक ही होवे है. श्रीमदाचार्यचरणने प्रभुकी सोनेकी कटोरी गिरवी रखके जब भोग अरोगायो तब आपने वा द्रव्यसूं समर्पित सारोको सारो प्रसाद गायनूकुं खवा दियो. ये है साम्प्रदायिक सिद्धान्त. या प्रकारके आदर्शरूप सिद्धान्तनूको जा (सार्वजनिक मन्दिर-हवेलीकी) प्रथासूं विनाश होवे, आचार्यनूकुं देवलक बनायो जाय, वा प्रथाकुं जितनी शीघ्र सम्प्रदायसूं हटा दी जाय, उतनो ही श्रेय यामें गोस्वामिसमाज तथा वैष्णवसमाज को निहित है.

(१७/ख) भगवत्सेवा सम्प्रदायकी आत्मरूप प्रवृत्ति है. आचार सेवाको अंग है, सेवाके अनुकूल आचारको पालन कियो जानो चहिये. आचार-पालनकुं प्रमुखता देके भगवत्सेवाको त्याग भी उचित नहीं है. भगवत्सेवा जैसे भी बने (अपने घरमें) करो...गुरुघरनूमें मत भेजो...यदि हम भगवद्द्रव्यकुं पेटमें डालेंगे तो वो अपराध है. ग्रन्थनूके अध्ययनके प्रति हमकुं समाजकुं आकृष्ट करनो चहिये.

(**नि.ली.गो.श्रीदीक्षितजी महाराज, मुंबई-किशनगढ** (१७/क)''आचार्यो-च्छेदक ट्रस्ट प्रथासे पुजारीपनकी स्थापना घोर सिद्धान्तहानि एवं घोर स्वरूपच्युति'' लेख.पृष्ठ.७, १७/ख.लेख 'श्रीवल्लभविज्ञान अंक ५-६ वर्ष १९६५में प्रकाशित वक्तव्य)

(१८/क) वैष्णवनूके पास जो भी परम पदार्थ है वाको अस्तित्व आजके ही दिनको आभारी है. कालकी भीषणता और परिस्थितिकी विषमता के अत्यन्त विकट युगमें श्रीमत्प्रभुचरणनूके दिव्य सिद्धान्तनूके ऊपर अटल रहवेपर

ही जीवमात्रको ऐहिक और पारलौकिक कल्याण हो पावेगो. अन्याश्रयके त्यागकी भावनापे जगत्के जीव दृढ़ रहें तो वैष्णव-हवेलीनूके वैभवके कारण जो वैष्णव घरसेवाकुं भूल चुके हते, संयोगवशात् उन हवेलीनूमें श्रीके दर्शन आज बन्द भये हैं यासुं अब वैष्णवनूके घर पुनः भगवत्सेवासूं किलकिलाते हो जायेंगे. ये लाभ सम्प्रदाय और सम्प्रदायीन् केलिये मामूली नहीं रहेगो. ईश्वरेच्छा अनाकलनीय होवे है. मोकुं तो श्रद्धा है के या कठिन परीक्षामें हम सभीनूको श्रेय ही सिद्ध होवेवालो है.

(१८/ख) मेरे अनुयायीनूकुं दो प्रकारकी दीक्षा दउं हूं. प्रथम कंठी बांधनी तथा दूसरी ब्रह्मसम्बन्धदीक्षा. कंठी-बांधनी साधारण वैष्णवनूकुं ही दी जावे हे तथा ब्रह्मसम्बन्ध विशेषरूपसूं उन अनुयायीनूकुं, जो सेवामें विशेषरूपसूं आगे बढ़नो चाहे हें. पहली दीक्षाकुं 'शरण-दीक्षा कहें हैं तथा दूसरी दीक्षाकुं 'आत्मनिवेदन कहें हैं. शरणदीक्षासूं वैष्णव सिर्फ नामस्मरण करवेको ही अधिकारी बने है तो सेवावाले वैष्णवकुं ब्रह्मसम्बन्धदीक्षा लेवेके बाद ही अधिकार मिले हे. ब्रह्मसम्बन्ध लेवे वालो वैष्णव अपने घरमें ही सेवाको अधिकारी होवे हे... हम स्वरूपकी सेवा नन्दालयकी भावनासूं करें हें. यालिये हम सातोंके सात पुत्रनूके घर 'घर' ही कहलावे हैं ओर हमारे घरकी सृष्टि 'तीसरे-घरकी-सृष्टि' कहलावे है.

(१८/ग) श्रीआचार्यचरणके सिद्धान्तोमें भगवत्सम्बन्ध और भगवत्सेवा को ही प्रधानता दी गयी थी. बादमें, परिलक्षित होता है कि, उसमें भी कुछ अन्तर आ गया. ...श्रीआचार्यचरणके और श्रीप्रभुचरणके, सेवक हम देख सकते हैं कि सभी प्रकारके हैं. ऐसा नहीं है कि अमुक विशिष्ट व्यक्ति ही भगवत्सेवाकेलिये योग्य होता है और अमुक परिस्थितिमें ही भगवत्सेवा हो सकती हो ऐसा कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है. अनेक प्रकारके जीव भगवत्सेवा करते थे. उनमें स्मशानवासी वेश्या आदिसे लेकर अच्छे विद्वान् ब्राह्मण भी थे आजके समयमें मुझे प्रतीत होता है कि हम उन चरित्रोंको भूल कर पीछेसे मुख्य बन गये ऐसे केवल भावात्मक रूपको ले कर बैठ गये हैं कि जो आज भी वैष्णवोंमें प्रचलित है. ...मैं मानता हूं कि चरित्रोंका विचार करनेमें सिद्धान्तोंकी आवश्यकता होती है.

(**तृतीयगृहाधीश नि.ली.गो.श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज, कांकरोली** (क) श्रीमत्प्रभुचरण प्राकट्योत्सव=ता.२४-१२-४८के दिन मुंबईके पुष्टिमार्गीय

वैष्णवनृकी सभामें अध्यक्षीय प्रवचन. (ख) बयान:मूर्तिबा कार्या.सहा.कमि. देवस्थानविभाग. खंड.उदयपुर एवं कोटा बजरिये कमिशन मु.कांकरोली.फाईल संख्या.१-४-६४. श्रीद्वारकाधीशमन्दिर दिनांक ७।११।६५. (ग) श्रीमद्वल्लभ अने श्रीहरिरायजी जीवनदर्शन भाग-२, वचनामृत २०मुं पृष्ठ.१४६,१४९).

(१९) आज मोकुं अपने हृदयके उद्गार कहवे दो, मेरो हृदय जल रह्यो हे मन्दिरनृमें मात्र द्रव्यसंग्रहकी प्रवृत्ति बच गई हे; ओर वोही अनर्थनृकी जड़ है. ऐसे मन्दिरनृके अस्तित्वसूं कोई लाभ नहीं है. हमारो सम्प्रदाय सामुहिक नहीं वैयक्तिक है. सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक अवश्य है परन्तु सार्वजनिक नहीं. "करत कृपा निज दैवी जीवनपर" या उक्तिमें 'निज शब्दको प्रयोग कियो गयो है. दैवीजीव कहीं भी हो सके हैं परन्तु सार्वजनिक रूपसूं नहीं. आज हम 'पुष्टि'को नाम लेवेके भी अधिकारी नहीं हैं!... आजको हमारो जीवन चार्वाक-जीवन हो रह्यो हे. क्या हम आज जा प्रकारको सम्प्रदाय हे वाकुं जिवानो चाहें हैं? यदि सच्चे सम्प्रदायकुं चाहो हो तो स्वरूपसेवा घर-घरमें पधराओ एवं नामसेवापे भार रखो... भक्तिकी प्राप्ति स्वगृहमें सेवा करवेसूं ही होयगी. आजके इन मन्दिरनृसूं कोई लाभ नहीं है क्योंकि इनमें द्रव्यसंग्रहकी प्रधानता आ गयी है; ओर जहां द्रव्य इकठ्ठो होय है वहीं अनर्थ हो जावे है. आज सम्प्रदायको विकृत स्वरूप याके कारण ही है.

(**नि.ली.गो.श्रीकृष्णजीवनजी महाराज, मुंबई-मद्रास** 'वल्लभविज्ञान'अंक ५-६ वर्ष.१९६५)

(२०/क) जैसे स्वरूपसेवा स्वार्थबुद्धिवश और लौकिक कार्य समझके नहीं करवेकी श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा है, वैसे ही नामसेवा भी वृत्त्यर्थ नहीं करनी चहिये, ऐसी आज्ञा श्रीमहाप्रभुजी निबन्धमें करें हैं... वृत्त्यर्थ सेवा करवेसूं प्रत्यवाय (दोष) लगे है. जैसे गंगा-जमुना जलको उपयोग गुदाप्रक्षालनार्थ नहीं कियो जा सके है, वैसे ही सेवाको उपयोग भी वृत्त्यर्थ नहीं करनो चहिये.

(२०/ख) तन और वित्त प्रभुकेलिये वापर्यो जाय तो मन भी प्रभुमें अवश्य लगे ही है अतएव श्रीवल्लभने उपदेश कियो है के "तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा". मानसी जो परा है वो सिद्ध करनी होय तो तनुवित्तजा सेवा आवश्यक

है. तन और वित्त कहीं एकत्र लगायो जाय तो चित्त भी वहां दिन-रात लग्यो रह सके है. दलालीको व्यवसाय करवेवालेके व्यवसायमें केवल तनसूं श्रम कियो जावे है. परन्तु वामें वित्त स्वयंको लगायो नहीं जावे है अतएव बजारके भावनृकी घट-बढ़में दलालकुं तनिक भी मानसिक चिन्ता होवे नहीं है... कोई बच्चाको पिता केवल ट्युशन फी देके समझ ले है के बच्चा परीक्षामें पास हो ही जायेगो. इन तीनोंकुं फलप्राप्ति होवे नहीं है क्योंकि तनुजा-वित्तजा दोनों नहीं लगी. अब तनुवित्त दोनों लगावेवालेके चित्तप्रवण होवेको उदाहरण देखें: एक दुकनदार दुकान और माल की खरीदीमें पूंजी लगाके व्यापार शुरु करे सुबहसूं रात तक वहां उपस्थित रहके जब तन भी व्यापारमें लगावे है तो या कारणसूं दिनरात वाकुं व्यापारके ही विचार आते रहे हैं : अच्छी तरह व्यापार कैसे करूं कैसे व्यापार बढ़े... अतः पुष्टिमार्गमें प्रभुमें आसक्ति सिद्ध होवेकेलिये मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया समझायी गयी है कि भावपूर्वक भक्तकुं तनुवित्तद्वारा सेवा करनी चहिये.

(**नि.ली.गो. श्रीगोविन्दरायजी महाराज पोरबन्दर :** (२०/क) 'सुधाधारा पृ.११४. (२०/ख) 'सुधाबिन्दु पृ.७३)

(२१) "अति धन्यवादार्ह हे कि आपने इतनी महेनत करके सम्प्रदायके सिद्धान्तनृकूं कोर्टमें समझाये"-"हमारो यामें पूरो सहयोग रहेगो तनमनधनसे...हमारे सभी चि.बालक या कार्यमें सहयोग करवेकुं तैयार हें".

(**नि.ली.गो.-श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज,** जामनगर, : गो.श्याम मनोहरजी(-पार्ला-किशनगढ़ कुं भेजे दि.२६-१०-८६ और ७-११-८६ के पत्रनृमें).

(२२/क) ट्रस्ट हवेली-मन्दिर यानि पुष्टिभावोंकी मौत :

भगवान्-स्वधर्म पूंजीसे बंधकर नहीं चलते; वे श्रद्धा और प्रेमपरवश होकर चलते हैं. आज जो (मन्दिरों-हवेलियोंके) ट्रस्टोंकी या न्यांसोकी प्रणाली चल रही है वह पूजीवादकी एक अभिनव दास्तां है जिसमें भगवान्, गाय, गुरु और धर्मानुयायिओं पर एकछत्र साम्राज्य करनेकी लालच समायी हुई है. इस तरहसे आदर्शका जामा पहने हुए इस धनलिप्सा और धनिकों की दास्तांमें वह प्रेम नहीं है जो एक अकिंचन भक्तके "रहिये मेरे ही महल अनत न जैये..." इस आत्मीयता भरे मीठे बैंनोंमें झलकती

है. यह प्रेमभरा अनुनय है और आजका ट्रस्टी और सत्ता भगवान्को पूंजी या सत्ता के जोर पर यह कहते हैं कि "इस स्थानसे जरासा भी नहीं हिलना, ध्यान रखना, मैं तुम्हारा व्यवस्थापक, ट्रस्टी हूं, चाहो या न चाहो, तुमको मुझपर भरोसा करना ही होगा, समझे!" लोग समझते हैं कि यह धर्मरक्षाका ही एक सर्वश्रेष्ठ रूप है, किन्तु... इसमें भी प्राणोंकी उतनीही असुरक्षा है जो मौतसे कम नहीं...वल्लभाचार्यने ऐसे जकड़े हुवे ईश्वरको दामोदर माननेसे भी इंकार कर दिया.

ठाकुरजीको ट्रस्टमें पधरानेवालोंने ठाकुरजीको बेच दिया है :

...अच्छी तरह सोचो कि ऐसी कौन माता होगी जो अपने लड़केको धनकी लालचमें बेच दे; या कोई प्रेमी कभी भी प्रत्यक्ष तो क्या सपनेमें भी ऐसा करना तो दूर रहा, सोच या देख भी नहीं सकता, इस विषयमें एक कहानी याद आती है...एक बार रुपये पैसेवाली बांझ औरत (आधुनीक दर्शनीया वैष्णव और ट्रस्टी) ने एक गरीब (गोस्वामी गुरु) का बच्चा (ठाकुरजी) खिलानेके लिये लिया. कुछ दिनों बाद बच्चेकी मांने जो गरीब थी बच्चा मांगा तो अमीर औरतने कहा कि ये तो मेरा ही बच्चा है, तेरा नहीं है. जो तुझसे हो सके वह करले. बैचारी गरीब मां...न्यायकी मांग करने लगी...मगर सभी (वैष्णव,आमजनता,सरकार) लोग उस गरीबके खिलाफ गवाही देने चले आये.

इस तरह धनने ईमान खरीदा, भगवान् खरीदा और उस उन्मुक्त बालककी गुंजती किलकारियां हमेंश-हमेंश के लिये चुप हो गई. लोगोंने कहा कि अब भगवान् बोलते नहीं, हंसते नहीं, खेलते नहीं हैं. किन्तु यह आशा उससे की जा सकती है जो जीवित हो, किसीके प्यारमें बन्धा हो. फिर उस खूबसूरत बच्चेकी नुमाईश और प्रदर्शन करने लगा, जैसे बेबी मिल्कके डिब्बेका चित्र या मोडेलका चित्र होता है.

ट्रस्टीओं द्वारा की जाती सेवा पूतनाके प्रेमके समान है :

रोज यह सोचा जाने लगा कि इससे क्या आमद हुई, कितनी बिक्री हुई. और सभी व्यवस्थापक इसकी निगरानी करने लगे. जब कोई आता देखने तो उसे दुलार किया जाता. लोग समझते हैं कि यह प्यार है, भक्ति है. मगर था तो वह व्यवसाय ही, जिसका रूप पूतनाके प्रेमकी भांति सच्चाईको छिपा गया और भोली यशोदाने लाल उसे खिलाने

दे दिया.

मन्दिर-हवेलियां दुकान बन चुके हैं :

कितनी बिक्री हुई इसका हिसाब रखा जाने लगा धर्म और धर्मस्वरूप यह बालक भगवान् जो प्यारसे भक्तोंके लिये भोला बन गया था. लोगोंने उससे फायदा उठाया और कह दिया - यह सार्वजनिक ईश्वर है. उस सर्वशक्तिमानको स्वार्थका साधन बना दिया और जगन्नियन्तापर धननियन्ता शासन करने लगे. हालत यह हुई कि कौन उसको खिलाये-पिलाये? वह तो सार्वजनिक था!

मन्दिर-हवेलियोंके ठाकुरजी जड बन चुके हैं :

द्वारकाधीशको भी यह छूट थी कि वह विदूरके घर साग खा सकता था किन्तु यह तो नितान्त निक्रिय बन गया, केवल दिखावा मात्र!

...क्या यह सिद्धान्त किसी प्रियतमके लिये प्रियतमा या माता को मान्य होगा? किन्तु यह आज मान्य है और मान्य करना होगा. केवल पैसेकेलिये अपना दिल नहीं, दुनियाका दिल बहेलानेको, वारांगनाकी भांति, जिसमें हृदय नामकी कोई वस्तु रह नहीं सकती और है तो बह मानी नहीं जाती. सभीका अधिकार है उसपर, जैसे वह सम्पत्ति हो, जो चाहें खरीदें, जो चाहे प्रयोगमें लायें, जैसा चाहे वैसा करे! उसको करना ही होगा. कैसी अनोखी है यह भक्ति और प्रेम की परिभाषा! फिर भी स्वतन्त्रताका घोष किया जाता है! क्या यह ही वह भक्ति है जिसे श्रीवल्लभ "महात्म्यज्ञानपूर्वक सुदृढ सर्वतोधिक स्नेह" कहते हैं? आज इस भक्तिका माहात्म्य ये ही है कि किस भगवान्के यहां कितनी आमद होती है!

ट्रस्ट मन्दिर पुष्टिप्रभुके लिये जेलखाना :

...अब कोई प्यारसे यह नहीं कह सकता कि मेरा बालक देरसे सोया है, जल्दी मत जगाना. सूरदासका पद भगवान्को जगानेकेलिये दुलार नहीं रहा, न कलेउके पदमें ममताका अनुनय है; यह तो कम्पलसरी ब्रेकफास्ट है जिसे समय पर कैदीकी तरह ईश्वरको करना पड़ता है. मानो एक जेलखानेमें उठने या खाने की घंटी बजी हो! ठाकुरजी बिक रहे हैं; मनोरथी-दर्शनार्थी भक्त नहीं ग्राहक हैं.

...श्रीवल्लभाचार्यने जीवनमें अपने कलेजेके टुकडे अपने आराध्यको कभी दूर नहीं होने दिया. आज वो बिक रहा है धनिकोंके हाथों और

जकड़ा है सरकारी शिकंजेमें, पब्लिक् पोलिसीके अंदर, और अब उसे म्युझियमकी शोभा बनानेका समय निकट आ रहा है.

धर्म और भगवान् की दशा किसी कोल्गर्ल्से भी बदतर है :

बेचारे धर्म और भगवान् की दशा किसी कोल्गर्ल्से भी बदतर है...भगवान्की सुंदर विनिन्दितमुक्ता-दंतपंक्ति बगला भगतोंको देखकर खिल जाती है. सदानन्द निरानन्द होकर इन ईमान खरीदनेवालोंके हाथों खुल्लेआम बेचा जा रहा है...सबको सहारा देनेवाला स्वयं बेसहारा होकर बैठा है अपने धनिक ग्राहकोंकी प्रतीक्षामें!

हवेली-मन्दिरमें देवद्रव्यका प्रसाद खाना मतलब नरककी टिकिट कटवाना :

धर्मशास्त्रमें जिस बुद्धिमान् ब्राह्मणको देवलकवृत्तिसे अधम माना गया है...आज उस देवलकवृत्तिका धन चटकारे लेकर वैष्णवसमाज खा रहा है. नाथद्वारेमें क्या चिज स्वादिष्ट है...ये ही विवेचन करता है...किन्तु मेरा कर्तव्य क्या है यह कभी नहीं सोचता. श्रीनाथजीमें अब धनिकोंका साम्राज्य है.

...नाथद्वारामें आजकल पैसा अधिक आ रहा है, क्योंकि वहां इन धनिकोंका साम्राज्य है. इनके दलाल श्रीनाथजीकी महिमा बढ़ाते हैं...गरीबोंकेलिये ठहरनेवाला भगवान् अब धनिकोंकेलिये ठहरता है.

श्रीवल्लभके आदर्शोंके स्मशान जैसें मन्दिर-हवेलियां :

भगवन्नाम भागवतसे अस्पतालोंकेलिये करोड़ोंकी रकम जमा होती है, और जामनगरमें आदर्श स्मशान भी है, किन्तु यहां तो स्मशानसे भी आदर्श गायब होता जा रहा है! शायद आदर्शका स्मशान है यह ट्रस्ट और सरकारी देवालय.

मन्दिरका प्रसाद खाया नहीं जा सकता है :

...वल्लभमतमें ये सिद्धान्तत गलत है ओर ऐसे देवस्थानोंका चढावेका प्रसाद भी नहीं खाया जा सकता. क्योंकि वहां देवलकवृत्ति ही प्रधान है.

दर्शन-मन्दिर धर्मप्रचारका माध्यम नहीं हो सकते :

जहां तक भगवत्स्वरूप या मूर्तिका प्रश्न है, धर्मप्रचार उनसे सम्बन्धित नहीं है और न उसे उचित कहा जा सकता है. क्योंकि भगवान्ने धर्मकी व्यवस्थाकेलिये वेदव्यासादि अनेक ज्ञानावतार और अंशावतार धारण करके

ही धर्मरक्षा की है. आजकी (सार्वजनीक हवेली-मन्दिरकी) व्यवस्था आचार्योचित और धार्मिक या भारतीय ही नहीं है तब वल्लभाचार्यसम्मत होनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता...हमारा इस विषयमें सुझाव है कि एक अलग व्यवस्था...करनी चाहिये जिससे वल्लभसिद्धान्तोंकी रक्षा हो सके. यदि ऐसी व्यवस्था नहीं कि जाती तो देवद्रव्य होता है. जिसका सेवन करनेसे आचार्य स्पष्ट कहते हैं कि नरकपात होगा.

नकली बैठके :

बैठकोंकी भावगंगा तो अब घरबैठे ही मनुष्यको पवित्र करने अपनी उत्ताल तरंगोसे सारे घर-बारको ही सराबोर करने लगी है!...८४ बैठकोंसे काम नहीं चला तो अब महाप्रभु श्रीवल्लभको मुसलमानोंके खेतोंमें अपनी झारी और अन्य चिन्ह प्रकट करनेको विवश होना पड रहा है!

(''हमारी धार्मिक स्थितिका वर्तमान स्वरूप एवं भविष्यकी व्यवस्थाहेतु प्रतिवेदन'' दिनांक. २५।२।८१)

(ख) श्रीवल्लभाचार्यने सेवाको खरीदनेकी बात नहीं कही है कि खरीद आओ रूपये देकर. नहीं! 'तनुवित्तजा'पदका अर्थ ही यह है कि वह समस्त पद है. जहां तन लगे वहीं धन लगे तब ही सेवा हुई. परन्तु धन लगे और तन न लगे तो सेवा हुई नहीं कहलाती है. (प्रथमेशवाक्सुधा-१, पृ.५९)

(ग)...''सेवाऽपि कायिकी कार्या'' यह नहीं कि पैसे दे दिये. पैसे देकर घरमें विवाहिता पत्नीको नहीं लाया जाता है, वैश्याको लाया जाता है. वेश्यासे घर नहीं बसता है यह स्पष्ट है. अतः साफ बात है कि भगवत्सेवा और वरण में पति-पत्नीका दृष्टान्त देते हैं कि जिनमें आत्मीय सम्बन्ध है. (प्रथमेशवाक्सुधा-१, पृ.७४)

(घ) भेंट भी आचार्यके सन्मुख ही होती है. प्रभुके सन्मुख भेंट नहीं होती है. देवलकवृत्तिसे बचनेकी विधि और वैदिक व्यवस्था को सम्हालकर रखना चाहिये अन्यथा बुद्धि बिगड़ेगी. ऐसा करनेसे पतन होता है, और हुवा है. (वहीं पृ.१७१)

वस्त्र-अलंकारोंमें मन अधिक जाता हो तो ऐसा साहित्य रखनेकी आवश्यकता नहीं है. ऐसा करनेसे लौकिक बढता है और धर्मभावना नष्ट

होती है...अतः वैभव बढ़ानेकी श्रीगुसांईजीने ना कही थी. और श्रीमहाप्रभुजीने नावको डुबोकर पुरुषोत्तमको ही घरमें पधराया था. (वहीं पृ.१८०)

(ङ) धर्म की परम्परा प्रदर्शनपर आधारित नहीं है पर एक यथार्थ जीवनका उज्वल पक्ष है...कुनवारा और अन्य मनोरथों...का रूप आगे चलकर महाप्रभु श्रीवल्लभकी आचार-परम्परा और सम्प्रदायकी मर्यादा को आहत करनेवाला होगा जिसकी आज कल्पना भी की नहीं जा सकती है. (वहीं पृ.१९७)

(नि.ली.गोस्वामी श्रीरणछोडाचार्यजी प्रथमेश.)

(२३/क) प्रश्न:'देवद्रव्य कायकुं कहे हैं? 'देवद्रव्य'को मतलब देवको द्रव्य. ऐसो द्रव्य या पदार्थ जो देवकुं ही उद्देश्य बनाके अर्पण कियो गयो होवे वाकुं 'देवद्रव्य कहे हैं. याही प्रकार गुरुकुं उद्देश्य बनाके अर्पण किये गये द्रव्यकुं 'गुरुद्रव्य' कह्यो जाय है. ...मन्दिरनूमें ठाकुरजीके सन्मुखमें भेंट धरे जाते द्रव्यकुं और ट्रस्टकी ऑफिसमें आते द्रव्यकुं तो स्पष्ट शब्दनूमें 'देवद्रव्य' कह्यो जा सके है; और वा द्रव्यसूं सिद्ध होती सामग्रीमें भगवत्प्रसादी होवेके बाद महाप्रसादपनो तो आवे है परन्तु वाके साथ वामें देवद्रव्यपनो भी रहे ही है. याही कारण वैष्णवनूकुं ऐसे महाप्रसादकुं देवद्रव्य समझके ही व्यवहार करनो चहिये. ऐसे महाप्रसादकुं लेवेमें देवद्रव्यको बाध तो रहे ही है.

(२३/ख) मन्दिरके स्थलके फेरबदलके बारेमें श्री गो.पू.१०८ श्रीबालकृष्णलालजीने कह्यो कि पुष्टिमार्गमें सार्वजनिक मन्दिरकी परम्परा नहीं है यामें व्यक्तिगत स्वरूप निजी स्वरूप की ही बात है; और याही कारण पुष्टिमार्गमें सेवाप्रकार देवालयके प्रकार जैसो नहीं है. मन्दिरको निर्माण भी घर जैसो होवे है कहीं भी ध्वजा-शिखर नहीं होवे है वैष्णव भी घरमें ही सेवा करे है तथा वाकुं 'मन्दिर ही कहे है...

(नि.ली.गो.श्रीबालकृष्णलालजी महोदय, सुरत, (क)'वैष्णववाणी अंक.३, वर्ष मार्च १९८३.(ख)'गुजरात समाचार अंक २५-५-९३में प्रकाशित)

(२४) पुष्टिमार्गकी आज उपेक्षा होती जा रही है. उसकी परम्परा ही अब टूटती जा रही है. इसके मूलमें यदि कुछ है तो वह है आजकी साधन-सम्पत्ति. वही हमारे संस्कार बिगाड़ रही है. अभी भी जिस घरमें

अलौकिक (प्रभु) सेवा होगी वहां पुष्टिमार्ग जरूर निभेगा. श्रीमदाचार्यचरणके मतानुसार गृहसेवा और अपने माथे बिराजते ठाकुरजीका अति स्नेहसे जतन करना ही सच्चे संस्कारका मूल है... श्रीगुसांईजीके समयमें छप्पनभोग जैसे मनोरथोंकी शुरुआत करनेके समय (उनमें) केवल लौकिकता ही बढ़ेगी ऐसी स्पष्ट सूचना दी गयी थी... आजकल... मंदिरोंका उपयोग यश-किर्ती प्राप्त करनेके लिये होने लगा है. मंदिरोमें प्राधान्य मनोरथीका होने लगा है. श्री(ठाकुरजी), गुरु तथा सेवाभावना का उपहास होने लगा है. जबसे मार्गीय सिद्धान्तोंका उपहास होने लगा है तबसे मंदिरकी उसके संचालकोंकी वृत्ति ही पलट गई है. आडंबर और यश को पुष्ट करनेकेलिये... दर-दर भटकनेकी स्थिति पैदा हो गयी है... इन सबका सच्चा उपाय इस कलिकालमें अपने सन्तानोंको जरूरी संस्कार अपने घरसे ही दिये जायें ये ही है.

...मंदिरोंका सम्पूर्ण व्यापारीकरण होने लगा है... सम्पत्ति... प्राप्त करनेकी लालच बढ़नेसे प्रभु(स्वरूपसेवा)को भी हम व्यापार स्वरूपमें परिवर्तित करने लगे हैं.

(जुलाई-२००७, पृ.६)

ठाकुरजीकी सेवा चोरकी तरह करनी चाहिये... सेव्यस्वरूपका मैं सेवक हूं उसका ढिंढोरा पीटना या उसका प्रदर्शन करना वह भी जीवके दैन्यमें विक्षेप उत्पन्न कर सकता है. ... अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकी सेवामें भी इतनी गुप्तता जरूरी है. "प्रीत हियेंमें राखिये प्रकट करे रस जाय" की रीतिसे तुम्हारे प्राणप्रेष्ठ तुमको जिस रसकी प्राप्ति करातें हैं उसे कभी भी प्रकट नहीं किया जा सकता है.

(सप्टेंम्बर-२००४, पृ.७)

आजतो श्रीनाथजी-नाथद्वारा, चंदबावा-कामवन और अन्य ठाकुरजीके दर्शन करते ही अपने माथे बिराजते ठाकुरजी भुला जाते हैं. पुष्टिमार्गमें तो 'श्रीजी'का अर्थ ही अपनें माथे बिराजते ठाकुरजी होता है. जिसमें 'तिरु'का अर्थ श्री और 'पति'का अर्थ नाथ (यानि श्रीनाथ) ही होता है. अर्थात् अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीमें ही अपने सर्वस्वका दर्शन होना चहिये. उनको आरोगाया मतलब समस्त जगतको प्रसाद लिवा दिया ऐसा भाव सिद्ध होना चाहिये. यहां तो उससे उलटी गंगा बह रही है. अपने सेव्य ठाकुरजीमें सभी निधिस्वरूपोंके दर्शन होनेके बदले अब तो अरे,

वहां तक कि जीवमात्रमें अपन अपने ठाकुरजीका दर्शन करनेका विचार कर रहे हैं! और फिर बुद्धिकी चतुराई भी वापर रहे हैं कि सभीमें ठाकुरजीका अंश है इसलिये घरमें प्रभुकी सेवा करें या अन्योंकी करें एक ही बात है!! अतः अन्यसेवामेंसे सन्तोष लेना शुरु किया. इससे शरीर, पैसा, कीर्ति सबकी रक्षा हो और ऊपरसे परम भगवदीय कहलाने लगें!!! (सप्टेम्बर-२००७, पृ.७)

(**पंचमगृहाधीश.नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी महाराज,** कामवन-विद्यानगर, वैष्णवता-'सांचे बोल तिहारे', प्रकाशक: पं.पी.गो.श्रीवल्लभलालजी महाराज)

(**२५/क**) हम श्रीवल्लभाचार्यजीकी आज्ञाको पालन कहां कर रहे हैं? अपने यहां गृहसेवा कहां (रह गयी) है? केवल मन्दिरनूमें दर्शनसूं क्या लाभ है? श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा है ''कृष्णसेवा सदा कार्या'' . यदि श्रीमहाप्रभुजी मन्दिरकुं मुख्य मानते तो अपनी तीन परिक्रमानूमें अनेक मन्दिर स्थापित कर देते. श्रीगुसांईजीने श्रीगिरधरजीकुं सातस्वरूपके मनोरथ करते समय या प्रकारकी चेतावनी दी थी. मन्दिरस्थापन करते समय उनकुं डर हतो के घरमेंसूं ठाकुरजी मन्दिरमें पधार जायेंगे. मेरे पिताजीने कल (उपर्युद्धृत वचनमें) जो कह्यो वो अक्षरशः सत्य है तुम अपने घरनूमें ठाकुरजीकुं पधराओ और सेवा करो.

(**२५/ख**) पुष्टिमार्गीय प्रणालिकाके अनुसार ट्रस्ट होनो उचित नहीं है. श्रीआचार्यचरणने प्रत्येक ब्रह्मसम्बन्धी जीवकुं आज्ञा दी है ''गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः'' (भक्तिवर्धिनी) अर्थात् गृहमें रहके स्वधर्माचरण करनो चहिये गोस्वामी बालक भी आचार्य होवेके बावजूद वैष्णव भी हैं. अतः आचार्यश्रीकी उपरोक्त आज्ञाकुं पालनो उनको भी कर्तव्य है... अतः मेरो तो माननो यही है के आचार्यचरणके सिद्धान्तके अनुसार वैष्णवनूकुं स्वयंके घरमें श्रीठाकुरजीकी सेवा करनी चहिये और धर्मग्रन्थनूको पठन-पाठन करनो चहिये. नहीं के मन्दिरनूमें जाके... ट्रस्ट तो पुष्टिमार्गीय प्रणालिकासूं संगत होवेवाली बात नहीं है प्रत्युत अपनी प्रणालीको भंग करवेवाली बात है.

(**नि.ली.गो.श्रीव्रजाधीशजी महाराज दहिसर-मुबई,** क-'वल्लभविज्ञान'. अंक ५-६ वर्ष १९६५, ख-'नवप्रकाश अंक ८ वर्ष ८)

(**२६**) क्योंकि श्रीनाथजी स्वयं वाके भोक्ता हैं किन्तु वैष्णव-वृन्द तथा सेवकगण भी वा महाप्रसाद लेवे तकके अधिकारी नहीं हैं. यह आचार्यचरणके इतिहाससूं प्रत्यक्ष प्रमाणभूत है वाके महाप्रसाद लेवेको केवल गायकुं ही अधिकार है. अन्यथा वा देवद्रव्यके उपभोग करवेसूं निश्चय ही अधःपतन है... सब प्रकारके दान-चढ़ावा व वसूल वसूली करवेको उल्लेख कियो गयो है, वो भी सम्प्रदायके सिद्धान्तसूं नितान्त विरुद्ध है अपने सम्प्रदायकी प्रणालीके अनुसार जो अपने सम्प्रदायके सेवक हैं, उनकोही द्रव्य गुरु-शिष्यके सम्बन्धसूं लेके सेवामें उपयोग करायो जा सके है. सम्प्रदायमें सब प्रकारके दान-चढ़ावानूको उपयोग सेवामें नहीं कियो जाय है; ओर कदाचित् कहीं कियो जातो होय तो वो सम्प्रदायके नियमनूसूं विरुद्ध होवेके कारण बन्द कर देनो चहिये.

(**सप्तमगृहाधीश पू.पा.गो.श्रीघनश्यामलालजी, कामवन** ''श्रीनाथद्वारा ठिकानेके प्रबन्धकी दिल्ली-योजनाकी आलोचना ता.१-२-५६'')

(**२७/क**)...ब्रह्मसम्बन्ध लेके सेवा करवेसूं प्रत्येक इन्द्रियनूको भगवानूमें विनियोग होवे है... मन्दिर-गुरुघर केवल उपदेशग्रहण करवेकेलिये हैं सेवा अपनकुं अपने घरनूमें करनी है.

('वल्लभविज्ञान'अंक ५-६ वर्ष १९६५)

(ख) आज बहुत घरोंमें सेवा होती है, पर क्या हम विश्वास पूर्वक कह सकते हैं कि यह सेवा वास्तविक सेवा है? क्या आजकी सेवा ''चेतस्तत्प्रवणं सेवा'' (चित्तका प्रभुमें प्रवण हो जाना वह सेवा है) का अक्षरशः सार्थक स्वरूप है?

वस्तुतः हम खुद वल्लभवंशज गोस्वामी भी यह दावा नहीं कर सकते हैं कि आज हम वास्तविक सेवा कर रहे हैं. यह कहनेमें मुझको लेशमात्र भी संकोच नहीं हो रहा है, क्योंकि मैं दम्भका संरक्षण करना नहीं चाहता हूं, अतः स्पष्ट है कि यदि हम गोस्वामीओंमें सेवाकी और श्रीमहाप्रभुजीद्वारा उपदिष्ट सिद्धान्तोंके पूर्ण परिपालनकी क्षमता होगी तो ही हमारे अनुयायी स्वयं सेवा और सिद्धान्त के परिपालनमें सक्षम हो पायेंगें, अन्यथा नहीं. क्योंकि हम गोस्वामी और वैष्णव एक ही तत्त्वके दो प्रकार हैं. वल्लभकुल बिन्दुसृष्टि है तो वैष्णव नादसृष्टि है. इस स्थितिमें श्रीमहाप्रभुजी

और श्रीगुसांईजी प्रभुचरण द्वारा की गयी आज्ञा वल्लभकुल और वैष्णव दोनोंकेलिये परिपालनीय है.

(**पू.पा.गो.श्रीमथुरेश्वरजी महाराज, बडौदा-सुरत, पुष्टिबोध भाग.१-२,वि.सं.२०३४**)

(**२८/क**) प्रश्न : आज चल रहे जो डिस्प्युट हैं वामें कितनेक सिद्धान्त चर्चित हो रहे हैं जैसे कि नये मन्दिर नहीं खोलने, ट्रस्ट-मन्दिर नहीं बनाने, ठाकुरजीके नामपे द्रव्य नहीं लेनो, ठाकुरजीके दर्शन नहीं कराने तथा बिना समजे-सोचे कोईकु ब्रह्मसम्बन्ध नहीं देनो, इन सब विषयमें आपको अभिमत क्या है?

उत्तर : देखो मन्दिरकी जहां तक स्थिति है तो ये बात सत्य है के पुष्टिमार्गीय प्रकारसुं मन्दिर तो मात्र एक ही है; ओर सब घरकी स्थिति हती ...आज मन्दिर जितने हैं अथवा जिन स्थानन्कुं अपन मन्दिर समझे हैं वो स्थान... वाकु अपन मर्यादापुष्टि मन्दिर कह सके हैं पुष्टिमन्दिर नहीं पुष्टिको प्रकार तो मात्र गृहसेवामें ही है.

('आचार्यश्रीवल्लभ', ऑगस्ट१९९४,अंक.५, पुष्टिमार्ग-वर्तमान.प्रश्न-उत्तर.४,पृ.७)

(**ख**) आजसे डेढ़सो वर्ष पूर्व, श्रीमहाप्रभुके समयसे तब तक, पुष्टिमार्गमें भगवन्मन्दिर खोलनेकी प्रणाली नहीं थी. प्रत्येक वैष्णवके घर-घर भगवत्सेवा हो उसका आग्रह रखा जाता था. वैष्णव अपने घरमें श्रीठाकुरजीके स्वरूपको सेव्य कराकर पधराकर गुरुघरकी प्रणालिका अनुसार सेवा करते थे. (व्रज मोंहे बिसरत नांही, पृ.१४०-१४१)

(**ग**) खेतमें भरे हुवे जलको पी नहीं सकते... वो अनाज तो पैदा कर सकता है. वो अपने पेट भरनेका साधन मात्र करता है. वो किसी दूसरेके ओर उपकारका नहीं होता है... अपना पेट पालनेकेलिये भगवद्गुणगान करते हैं वो उस प्रकारके होते हैं कि जैसे खेतमें भरा हुवा पानी होता है. पद्मनाभदासजी... आचार्यचरणके निबन्धका श्लोक समझाने पर ही उन्होंने अपनी पौराणिक वृत्तिको छोड़ दिया!... अपने मकानमें बरतन धोनेके पनाले हैं उसमें जो जल जाता है वो एक गढ्ढेमें इकठ्ठा हो जाता है... वो पानी तो केवल गंध ही मारता है... भगवद्भाव होते हुवे भी जिनके

स्वभावमें दुःसंगके द्वारा दोष उत्पन्न हो जाता है ऐसे मनुष्य उस गंदे गढ्ढेके समान बन जाते हैं कि जिसमें पानी भरा हुवा तो होता है लेकिन वो पानी किसी उपयोगका नहीं होता. वो भरा हुवा पानी केवल दुर्गन्ध पैदा करता है... पांचवे (भगवद्गुणगान करके अपनी आजीविका चलानेवाले नीच वक्ताओंके भाव) गटरके समान दुर्गन्धयुक्त...अस्पृश्य होते है. (जलभेद प्रवचन, वड़ोदरा)

(**तृतीयगृहाधीश पू.पा.गो.श्रीव्रजेशकुमारजी महाराज,** कांकरोली-वड़ोदरा)

(**२९**) श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के दुनियामें भटकते रहेते अपने मन-चित्त(कुं) श्रीठाकुरजीके सङ्ग जोडिके विनकी तनु-वित्तजा सेवा करनी. तनुवित्तकी सेवा अर्थात् स्वयं उपार्जित अपने धनसों अपने ही घरमें श्रीठाकुरजीकी अपने ही शरीरसों सेवा करनी सो.

(**पू.पा.गो.चि.श्रीवागीशकुमारजी, वडोदरा-कांकरोली** 'वल्लभीयचेतना', ऑक्टोबर१५ २००३,पृ.४)

(**३०**) जो घरमें रहकर प्रभुकी सेवा करते हैं वे स्वयं तो कृतार्थ होते ही हैं किन्तु उनके परिवारके परिजन भी कृतार्थ होते हैं. ... सभी इन्द्रियसे अन्तःकरणसे भजनानन्दका अनुभव घरमें रहकर श्रीठाकुरजीकी सेवासे होता है. ... इसलिये घरमें आचार्य श्रीगुरुचरणसे पुष्ट करके श्रीठाकुरजी पधराओ और समयको सेवामय बनाओ. ... श्रीठाकुरजी घरमें बिराजते हैं तो घर घर नहीं रह जाता, वह प्रभुकी क्रीडाका स्थल बन जाता है... नन्दालयकी लीलाका स्थल बन जाता है.

...मुकुन्ददास...रामदास सांचोरा...किशोरीबाई...जीवनदास...इन महानुभावोंने...श्रीनाथजी तथा घरके श्रीठाकुरजीमें भेद नहीं समझा.

...श्रीठाकुरजी अपने निधि अर्थात् सर्वस्व हैं. ... ऐसे पूर्णपुरुषोत्तम श्रीनन्दराजकुमारको श्रीमहाप्रभुजीने हमारी गोदमें पधराकर हमें भाग्यशाली बनाया है. यह अलौकिक निधि (धन) देकर हमें धन्य बनाया है. इससे बड़ा दूसरा कौनसा फल हैं!

...जो सांसारिक कामनासे श्रीठाकुरजीका भजन अर्थात् दर्शन स्मरण सेवा करता है उसे क्लेश ही हाथ लगता है. ... इसी तरह जो अपने

माथे श्रीठाकुरजी घरमें बिराजते हैं उन्हें हम चाहे जैसे नये-नये पुष्टिमार्गीय मनोरथ करके सामग्री सिद्ध करके लाड़ लड़ा सकते हैं परन्तु यह अधिकार किसी दूसरे ठिकाने थोड़ी मिल सकता है. अतः ''घरके ठाकुरके सुत जायो नन्ददास तहां सब सुख पायो''.

श्रीनाथजीको भी देवालयकी लीला छोड़कर नन्दालयकी लीला करने हेतु श्रीगुसांईजीके घर पधारना पड़ा. ''व्याजं लौकिकमाश्रित्य श्रीविट्ठलेशगृहे अगमत्''. अतः श्रीनाथजीका यह पाटोत्सव ही मुख्य माना गया है जो फाल्गुन कृष्ण सप्तमीको आता है.

अतः घरके ठाकुरजीका स्वरूप समझना बहुत आवश्यक है. कोई पत्नी अपने पतिकी सेवा न करे, उसके गुणगान ही करती रहे... तो क्या पति सन्तुष्ट होगा? इसी प्रकार... जो सेवा न करे, कृष्ण-कृष्ण गुणगान करते रहते हैं, परन्तु सेवा स्वधर्मसे विमुख रहते हैं वे हरिके द्वेषी हैं (विष्णुपुराण) सेवासे सेव्यको सन्तोष मिलता है यही वैष्णवका स्वधर्म है.

(**पू.पा.गो.श्रीगोकुलोत्सवजी महाराज, इन्दौर-नाथद्वारा,** २५२ वैष्णव वार्ता, खंड-२ की भूमिका पृ.१५-३६)

(३१/क) गो.श्रीहरिरायजी : जरा ध्यानसे सुनें... ''तत्र अयम् अर्थः लाभपूजार्थयत्नस्य उपधर्मत्व-देवलकत्वादि'' स्पष्ट सुनें, ''सम्पादकत्वात्''... लाभ-पूजार्थ यत्न करता है जो सेवा करके, जब वो लाभ-पूजार्थ प्रयत्न करता है तो वो उपधर्म हुवा; देवलकत्व आदि जो दोष हैं वो उसमें प्रविष्ट होंगे ...

गो.श्रीश्याममनोहरजी : अर्थात् यह खास ध्यानमें रखना कि जिस स्वरूपकी भावप्रतिष्ठा की गयी हो उस स्वरूपकी भी लाभ अथवा पूजा केलिये यदि सेवा की जाती है तो सेवा करनावाला देवलक(पापी बन रहा है...

गो.श्रीहरिरायजी : और उपधर्मत्व होता है... और ये निषिद्ध है...

गो.श्रीश्याममनोहरजी : इस स्थितिमें गुरु अपने लाभ अथवा पूजा केलिये शिष्यसे कुछ भी ठाकुरजीकेलिये मांगता है तो वह... शास्त्रनिषिद्ध होनेसे... दान होनेसे देवद्रव्य होनेसे उपयोग करने योग्य नहीं होता है.

गो.श्रीहरिरायजी : हां बिलकुल... ये तो बिलकुल स्पष्ट है... 'स्ववृत्तिवाद'से भी स्पष्ट होता है.

('पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा विस्तृत विवरण पृष्ठ १६४,१९३)

(ख) श्रीमदाचार्यचरणने ''तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा'' यह कहा है. कारणके दो अलग अलग व्यक्ति तनुजा वित्तजा करते हैं तो मानसी सिद्ध नहीं होती... इसी अभिप्रायको समझानेकेलिये आचार्यचरणने 'तनुवित्तजा' यह समस्तपद कहा है...वेतनके रूपमें वित्त लेकर या देकर दो पुरुषों द्वारा की गई ऐसी तनुता-वित्तजा सेवाएं मानसीकी साधक नहीं होती यही अभिप्राय बतानेकेलिये तनुवित्तजा समस्तपद कहा गया है. अन्यथा तनुवित्तजा न कह कर तनुजा वित्तजा ही कहते... यदि दो अलग-अलग व्यक्ति तनुजा और वित्तजा करें तो दोनों सेवाओंकी एक संयुक्त अवस्था तनुवित्तजा नहीं बन पाती. अतएव मानसी सिद्ध नहीं होती.

(ग) जहां तक लाभपूजार्थत्वका सवाल है तो वह तो किसी भी कोटिका भक्त करेगा तो देवलक ही होगा...यदि कोई स्वलाभपूजार्थ दर्शन-मनोरथ-महाप्रसाद आदि करता है तो अवश्य देवलक है...**अन्यके घरमें, अन्यके वित्तसे, अन्यके ठाकुरजीके भोगका महाप्रसाद लेना घोर सिद्धान्तविरुद्ध है.**

(घ) अब रहा सबाल ट्रस्टकी इन्कम और प्रोफिट यानी आय और लाभ का, तो ट्रस्टके आय-लाभ हम नहीं लेते. उलटा भगवत्शास्त्रोक्त सर्वलाभोपहरण न्यायसे ट्रस्टका सारा लाभ भगवदर्थ या गो-ब्राह्मणार्थ लगा देते हैं. ... हमारे प्रभुको नित्यनेगभोग हम स्ववित्तजासे अरोगाते हैं.

(ङ) पुष्टिमार्गीय वैष्णवके लिये श्रीभागवतकथा करके वृत्ति करना निषिद्ध है.

(**पु.सि.सं.शि.पू.पा.गो.श्रीहरिरायजी महाराज, जामनगर,** अनिर्दिष्टपृष्ठसं-ख्याक 'तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा')

(३२) अपने सम्प्रदायमें इतनो अधिक सिद्धान्तवैपरीत्य हो गयो है कि गुजरातके एक गांवमें...अपने सम्प्रदायके ही दो मन्दिर हैं और मन्दिरन्की दीवार भी एक ही है; परन्तु...इतनो लोकार्थित्व समाजमें उत्पन्न हो गया है...सवेरो होते ही चन्द्रमाजीवाले वैष्णव बालकृष्णलालको जो मेवा होवे है वो चन्द्रमाजीमें ले जावे हैं और बालकृष्णजीवाले जो वैष्णव होवे हैं वो चन्द्रमाजीको जो मेवा और प्रसाद होवे है वाकु बालकृष्णलालजीमें ले आवे हैं! ऐसी जबरदस्त होंसातोंसी वैष्णवसमाजमें पैदा हो गई है के मानों एक-दूसरेके संग स्पर्धा करते होवें. ऐसो ईर्ष्या-द्वेषको वातावरण

जब सेवाके क्षेत्रमें उत्पन्न हो जावे तो वासूं बढ़के लोकार्थित्व ओर क्या हो सके है!... ऐसे सभी सिद्धान्तवैपरीत्यकी फज़ीहत यदि सर्वाधिक कहीं होती होय तो गुजरातमें होवे है. भागवतमें भी लिख्यो है के "गुर्जरे जीर्णतां गताः" भक्ति गुजरातमें आके बूढ़ी हो गई है. अन्धानुकरण बढ़ा हो तो वह गुजरातमें बढ़ा है... अतः सिद्धान्तकी सत्यनिष्ठा... और श्रीमहाप्रभुजीके पुष्टिसिद्धान्तों के सद्जागरणकी कहीं आवश्यकता है तो... गुजरातमें.

(**पू.पा.गो.श्रीद्रुमिलकुमारजी, सुरत** "पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा दि.१०-१३जनवरी,९२. पार्ले-मुंबई विस्तृतविवरण" पृ.३१७-३१८)

(**३३**) प्रश्न : अपने सम्प्रदायमें मन्दिरकुं 'मन्दिर न कहके 'हवेली क्यों कह्यो जावे है?

उत्तर : सामान्यतया इतर हिन्दु-सम्प्रदायमें 'मन्दिर शब्द देवालयके अर्थमें प्रयुक्त होवे है परन्तु ऐसे देवालयके रूपमें मन्दिर जैसी संस्थाको पुष्टिमार्गमें अस्तित्व ही नहीं है. क्योंकि पुष्टिमार्गमें अपने माथे जो प्रभु पधराये जावे हैं वे प्रभुस्वरूप और उनकी सेवा हरेककु व्यक्तिगतरूपमें वाकी भावनाके अनुसार पधराये जावे हैं. स्वयंके श्रीठाकुरजीकी सेवा पुष्टिमार्गीय जीवको एकमात्र स्वयंको कर्तव्य बन जातो स्वयंको ही धर्माचरण है. पुष्टिमार्गमें सेवा सामुहिक जीवनको विषय नहीं परन्तु व्यक्तिगत जीवनको विषय है. जेसे लोकमें पत्नी अथवा माता को पति अथवा पुत्र की सेवा या वात्सल्य प्रदान करवेको वाको व्यक्तिगत धर्म उत्तरदायित्व और अधिकार होवे है. वा ही तरह जा सेवकके जो सेव्यस्वरूप होवे हैं वा सेव्यस्वरूपकी सेवा वाको व्यक्तिगत धर्म और अधिकार होवे है. सेवा कोई सार्वजनिक कार्य या सार्वजनिक प्रवृत्ति नहीं परन्तु सेवा तो स्वयंके आन्तरिक जीवनके साथ सम्बन्ध रखवेवाली बात होवेसूं स्वयंके जीवनकी स्वयंके घरमें की जावेवाली धर्मरूप प्रवृत्ति है... अतः इतर हवेलीनूकी तरह जैसे 'श्रीनाथजीको मन्दिर' शब्द रूढ़ हो गयो होवेसूं प्रयोग कियो जावे है. वस्तुतः तो सामुहिक दर्शन या सेवा जहां की जाती हो ऐसे अन्यमार्गीय सार्वजनिक-देवस्थान जैसो वो मन्दिर नहीं है.

(**पू.पा.गो.श्रीवल्लभरायजी महाराज, सुरत** 'पुष्टिने शीतल छांयडे पृ.सं.१५७-१५८)

(**३४**) श्रीमहाप्रभुजीने अलग-अलग मन्दिरनूकी प्रणाली खड़ी नहीं करी; परन्तु यामें जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्यकी एक दूरदृष्टि हती... प्रत्येक वैष्णवको घर नन्दालय बननो चहिये... कोई मन्दिरके पड़ौसमें एक बहन रहे है वाकुं मन्दिरकी आरतीके घंटानाद सुनाई पड़े हैं. सेवा करवेकुं बैठी भई वो बहन ठाकुरजीके वस्त्र बड़े करके स्नान करावे जा रही हती ऐसेमें आरतीके घंटानाद सुनाई दिये. वो ठाकुरजीकुं वहीं वाही अवस्थामें छोड़के मन्दिरकी तरफ दौड़ गई. थोड़ी देरके बाद लौटके घर आई. अब विचार करो कि या तरहसूं कोई सेवा करे तो वामें आनन्द कभी आ सके है क्या? **यहां तो प्रत्येक वैष्णवको घर नन्दालय है.**

(**पू.पा.गो.सुश्रीइन्दिरा बेटीजी, वडोदरा** 'वैष्णवपरिवार अंक.जून ९०)

(**३५**) तनुजा सेवा और वित्तजा सेवा एक ही व्यक्ति करे तब कहीं जाकर वह मानसीको सिद्ध करती है. केवल तनुजा करली या केवल वित्तजा करली तो अहन्ता-ममता दूर नहीं होगी. ... कैसे? मैं आपको एक उदाहरण देता हूं... जो घरसेवा करते हैं उनकेलिये तो को प्रश्न नहीं है. लेकिन यदि कोई वित्तजा सेवा करेगा तो समझ लीजीये कि उसने मन्दिरमें भेंट दी, मनोरथ किया. उसकी आप रसीद लेंगे... तब आप कहेंगे "मैने सेवा लिखायी है". आप कहते हैं "मैंने सेवा लिखायी है" तब अहन्ता कहां दूर हुई? अब आप मेहताजीसे क्या मांगोगे? "ये मेरी रसीद है मेरा प्रसाद लाओ". तो देखीये अहन्ता-ममतामें हम और बंध गये. तो ऐसी सेवा संसारको दूर नहीं करेगी. संसारमें बांधेगी... केवल यदि हम वित्तजा करते हैं तो हमारे अहंकारको बढाते हैं. और अहन्ता दूर न होगी ममता दूर न होगी तो मानसी कैसे सिद्ध होगी? क्योंकि सभी बन्धनका मूल अहन्ता-ममता ही है.

(**पू.पा.गो.श्रीद्वारकेशलालजी महाराज, कामवन-सुरत** सिद्धान्तमुक्तावली प्रवचन भरूच जनवरी २००५)

(**३६**) पुष्टिमार्ग गुप्त है दिखावाकेलिये तो है ही नहीं, भक्त और भगवान् के बीच आन्तरिक सम्बन्ध दृढ करवेको मार्ग है... दोनोंके संबंध ऐसे होने चहिये कि कोई तीसरेकुं वाकी जानकारी न हो पाये. अपनो अपने भगवान्के

साथ क्या सम्बन्ध है याकुं दूसरे कोई व्यक्तिकुं जतावेकी आवश्यकता ही क्या है? प्रशंसा पावेकुं स्वयंकी महत्ता बढ़ावेकुं? ये तो सभी कुछ बाधक है.

(**पू.पा.गो.चि.श्रीद्वारकेशलालजी, अमरेली-कांदीवली** 'पुष्टिनवनीत' पृ.१२)

(**३७**) चित्त भगवत्प्रेममें परिपूर्ण होइ जाय, पूर्णतः भगवान्‌में लगि जाय, तन्मय अरु तल्लीन होइ जाय है. तब परासेवा होत है. याकों मानसी सेवा कह्यो जाय है. याके सङ्ग मनुष्यकों शरीरसों हु सेवा करनी चहिये... तनुजा सेवासों शरीरकी शुद्धि होत है. अहन्ता-अहंपनेंको नाश होत है. धनसों करी जाती सेवा 'वित्तजा'सेवा है. वासों ममता-मेरोपेनेंको नाश होत है. अहन्ता अरु ममता एक-दूसरेके सङ्ग जुडे भये रहत हैं तासों तनुजा अरु वित्तजा सेवा एकसङ्ग करनी चहिये यामें प्रधानता तनुजा सेवाकी है. केवल धन दे देवेसों सेवा होत नाहीं है वासों तो (चित्तमें) राजसी वृत्ति होत है.

(**षष्ठगृहाधीश पू.पा.गो.चि.श्रीद्वारकेशलालजी वडोदरा** श्रीमद्‌भगवद्गीता पुष्टिदर्शन पृ.१२५)

(**३८/क**) "श्रीमहाप्रभुजी वल्लभाचार्यजीके पुष्टिसम्प्रदायमें दो दीक्षाएं दी जाती हैं. दोनों दीक्षाओंका प्रयोजन और तत्पश्चात् कर्तव्य का भी विचार बहुत आवश्यक है. केवल शिष्येषणासे प्रेरित होकर शिष्य बनानेकेलिये दी जाती दीक्षासे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है. जो भगवत्सेवा करनेकेलिये तैयार नही है उसको कदापि ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा लेनी नहीं चाहिये. परन्तु श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्तोंमें यदि निष्ठावान् है तो उसे केवल नामदीक्षा लेनी चाहिये और अन्याश्रयका त्याग करके श्रीकृष्णका आश्रय दृढ करनेकेलिये प्रयत्नशील होकर नामसेवारत रहना चाहिये. परन्तु ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा लेनेके बाद श्रीकृष्णकी सेवा करनी अनिवार्य है.

श्रीकृष्णकी सेवा भी श्रीमहाप्रभुजीद्वारा दिखलाई गयी रीतिके अनुसार ही हो सकती है. अपने घरमें अपने परिवारके सदस्योंके साथ अपने ही द्रव्यसे भगवत्सेवा करनी चाहिये. किसीको द्रव्य देकर अथवा किसीसे द्रव्य लेकर की जाती सेवा वह भगवत्सेवा तो कदापि नहीं ही है परन्तु श्रीमहाप्रभुजीका

द्रोह होनेसे गुरु-अपराधसे ग्रसित बनाकर आरुढपतित बनाती है और इस भक्तिमार्गसे भ्रष्ट करती है. आजीविका चलानेकेलिये की जाती व्यावसायिक सेवासे तो चांडालके समान हीन देवलक बन जाते हैं. अतः भगवत्सेवा अपने घरमें अपने द्रव्य और तनसे ही की जा सकती है.

सेवाकी ही तरह भगवत्कथा-कीर्तन भी स्वयं अथवा निष्काम भगवदीयोंके साथ करने चाहिये. व्यावसायिक कथाकारोंको द्रव्य-दक्षिणा देकर अथवा लेकर करायी जाती कथा राखमें घी होमनेके तुल्य है. ऐसी कथा, पारायण, कीर्तन अथवा सप्ताह पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तसे सर्वथा विरुद्ध हैं. अतः सेवा और कथा दोनों द्रव्य देकर अथवा लेकर करनेसे किसी भी तरहके अलौकिक पुष्टिफलकी प्राप्ति किसी तरहके अलौकिक पुष्टिफलकी प्राप्ति स्वप्नमें भी नहीं हो सकती है. हां, बहिर्मुख अवश्य होते हैं.

(**ख**) "अमे तो राजना खासा खवास मुक्ति मन न आवे रे" व्रजाधिपका सेवन करनेवाले हम मुक्ति नहीं मांगते हैं फिर भी पुष्टिमार्गी वैष्णव भागवत सप्ताह बैठाकर अपने पितृओंको मोक्षके मार्गपर भेजते हैं! पितृमोक्षार्थ भागवत सप्ताह, कोई एकसो आठ! कोई एक हजार आठ!... अपने पितृ तो गोलोकमें जाते हैं! उनको वापिस मोक्षमें क्यों भेजते हो!... भागवत सप्ताह पूरी हो जानेके बाद माला पहेरामणी (सौराष्ट्रकी एक वैष्णव परम्परा) की जाती है और कहते हैं कि अब गोलोक धाम... अब गोलोक धाममें भेजना है मतलब यह हुवा कि पितृओंको यहां से वहां सिर्फ धक्के हि खिलवाने हैं! हमारा कोई ध्येय ही निश्चित नहीं है!! हमने श्रीमहाप्रभुजीके ग्रन्थोंको खोला नहीं है उसका यह दुष्परिणाम है कि जिसे हमारे पूर्वजोंको भुगतना पड़ रहा है.

(**पू.पा.गो.चि.श्रीपुरुषोत्तमलालजी, जुनागढ,** श्रीयमुनाष्टक प्रवचन राजकोट २००६)

संयुक्तघोषणापत्र : सुप्रिमकोर्ट

...जहां तक सिद्धान्तके निश्चित स्वरूप या व्याख्या का प्रश्न है, हम सभी धर्माचार्य, हमारे सम्प्रदायके प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य तथा परवर्ती अन्य भी मान्य सभी व्याख्याकारोंके सन्देहरहित विधानोंके आधारपर,

यह स्पष्टतम शब्दोमें घोषित करते हैं कि हमारे धार्मिक सिद्धान्त एवं परम्पराओं के अनुसार भगवत्सेवा, सेवास्थल, सेवोपयोगिसम्पत्ति, सेवाकर्ता (उपदेशक या अनुयायी) एवं सेव्य भगवत्स्वरूप का निजी अथवा पारिवारिक होना एक अनुल्लंघ्य धार्मिक अनिवार्यता है. अतः इनमेंसे किसीको भी सार्वजनिक बनाना सर्वथा धर्मविरुद्ध होनेसे एक घोर धार्मिक अपराध है.

...वाल्लभ सम्प्रदायके सिद्धान्तके अनुसार निजघरमें निजधनको तथा निज परिवारजनोंको भगवत्स्वरूपकी सेवामें उपयोगमें लाना ही आराधनाका वास्तविक स्वरूप है.... अतः निजघरमें निजधनके विनियोग द्वारा तथा निजपरिवारके जनोंके सहयोग बिना की जाती आराधना, वाल्लभ सम्प्रदायकी आराधनाकी परिभाषाके अनुसार, आराधना ही नहीं है. ऐसी स्थितिमें हमारे घरोंमें आती जनताद्वारा हमारे सेव्य भगवत्स्वरूपके दर्शन करना या भेंट चढाना आदि आचरण आराधनाके अन्तर्गत मान्य क्रियाकलाप नहीं है.

...यदि निज घरमें न किया जाता हो तो ऐसे भगवद्भजनको पुष्टिमार्गीय परिभाषामें भगवद्भजन ही नहीं कहा जा सकता है. पुष्टिमार्गमें निजघरमें रहकर भगवद्भजन करनेके प्रकारके अलावा अन्य कोई प्रकार भगवद्भजनका है ही नहीं.

...भेंट धरे हुए धनसे भोग धरी हुई सामग्रीका प्रसादत्वेन ग्रहण हमारे यहां सर्वथा वर्जित है... सार्वजनिक मंदिरमें दर्शनार्थी जनताके प्रतिनिधिके रूपमें सेवा करनेकी प्रक्रियाको न तो वाल्लभ सम्प्रदायमें अवकाश है और न वैसा आचरण सिद्धांततः प्रशंसनीय ही है. भगवत्सेवाका अनुष्ठान न तो नौकरी और न धंधा के रूपमें किया जा सकता है.

...श्रीमहाप्रभु सभी पुष्टिमार्गीयोंको सैद्धान्तिक निष्ठा स्वधर्मानुसरणका सामर्थ्य तथा पारस्परिक सौमनस्य प्रदान करें.... सभी पुष्टिमार्गीयके निजघरोंमें बिराजमान सेव्यस्वरूप सर्वदा निजी ही रहें, कभी सार्वजनिक न बन जायें "बुद्धिप्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु".

हस्ताक्षर कर्ता:

गो शरद अनिरुद्धजी (मांडवी-हालोल)
गो किशोरचन्द्र (मांडवी-जुनागढ)
गो अजयकुमार श्यामसुंदरजी (मद्रास)

गो मनमोहन (मुंबई)
गो श्यामसुन्दर मुरलीधरजी (बोरीवली)
गो हरिराय कृष्णजीवनजी (मुंबई)
नि.ली.गो.श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीकृष्णजीवनजी (मुंबई)
गो वल्लभलाल श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो हरिराय श्रीगोविंदरायजी (पोरबंदर)
नि.ली.गो.श्रीव्रजाधीषजी श्रीकृष्णजीवनजी (दहिसर)
गो व्रजेशकुमार श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
नि.ली.गो.श्रीकृष्णकुमार श्रीरमणलालजी (कांदीवली-कामवन)
गो राजेशकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो विजयकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो योगेश्वर मथुरेश्वरजी (वडोदरा-सुरत)
गो रघुनाथलाल श्रीरमणलालजी (कामवन-गोकुल-पार्ला)
गो देवकीनन्दनाचार्य (गोकुल-अमदावाद)
गो नवनीतलाल श्रीगोविंदलालजी (कामवन-भावनगर)
गो मुरलीमनोहर श्रीव्रजाधीशजी (दहिसर)
नि.ली.गो.श्रीमाधवरायजी श्रीगोकुलनाथजी (मुंबई-नासिक)
गो रमेशकुमार श्रीगोपीनाथजी (मुलुंड-नासिक)
गो कल्याणराय (कन्हैयाबावा (वीरमगाम-अमदावाद)
गो योगेशकुमार (मुंबई)
गो व्रजप्रिय मुरलीधरजी (बोरीवली)
गो नीरजकुमार श्रीमाधवरायजी (मुंबई-नासिक)
गो शरदकुमार (शीलूबावा श्रीमुरलीधरजी (पोरबंदर)
गो चन्द्रगोपाल (चंदुबावा श्रीमुरलीधरजी (पोरबंदर)
नि.ली.गो.श्रीनृत्यगोपालजी श्रीकृष्णजीवनजी (मुंबई)

पत्रद्वारा सम्मतिः

नि.ली.गो.श्रीबालकृष्णलालजी श्रीगोविंदरायजी (सुरत)
नि.ली.गो.श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज (जामनगर)
पञ्चमपीठाधीश्वर नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी (कामवन-वल्लभविद्यानगर)
नि.ली.गो.श्रीगोविंदलालजी (कोटा)

गो.श्रीअनिरुद्धलालजी श्रीद्वारिकेशलालजी (मांडवी-हालोल)
गो.श्रीमधुसूदनजी श्रीकृष्णचन्द्रजी (चेन्नई)
गो.श्रीव्रजभूषणलालजी (जामनगर)
गो.श्रीविट्ठलनाथजी श्रीव्रजभूषणलालजी (चापासेनी-जूनागढ-जामनगर)
गो.श्रीहरिरायजी श्रीव्रजभूषणलालजी (जामनगर)
गो.श्रीव्रजरत्नजी श्रीव्रजभूषणलालजी (नडीयाद-जामनगर)
गो.श्रीनवनीतलालजी श्रीव्रजभूषणलालजी (जूनागढ-जामनगर)
गो.श्रीबालकृष्णजी श्रीव्रजभूषणलालजी (जेतपुर-जामनगर)

(**''महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यवंशज गोस्वामीओंका संयुक्त-घोषणापत्र''** १९८६ पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा संक्षिप्त विवरण पृष्ठ.४९-७८, फोटोकोपी देखें : सचित्र अमृतवचनावली, संयुक्तप्रकाशन, सन.२००८)

॥ सिद्धान्तवचनावलीके अंश ॥

कोई पुरुष कृष्णसेवामें तत्पर है कि नहीं, दम्भादि दुर्गुणोसे रहित है कि नहीं; और श्रीमद्भागवत पुराणके मर्मका विज्ञ है कि नहीं यह सर्वप्रथम देखना चाहिये और तभी किसी जिज्ञासुको ऐसे व्यक्तिमें गुरुबुद्धि रखकर उसके पास जाना चाहिये.

...ऐसे गुणोंसे युक्त गुरु बलवान् कलियुगके कारण न मिलें तो... स्वयं ही भगवत्सेवामें प्रवृत्त हो जाना चाहिये. पात्रापात्रका विवेक रखे बिना यदि नामदीक्षा प्रदान की जाती है तो भगवन्नामविक्रयका दोष लगता ही है जिसके कारण दीक्षादाता अपराधी बनता है.

...एक प्रकार सेवाका यह भी हो सकता है वह वित्त देकर किसी अन्य पुरुषद्वारा करा ली जाये; और दूसरा प्रकार यह हो सकता है कि वह सेवा किसी दूसरेसे वित्त लेकर की जाये. ऐसे दोनो प्रकारोंसे की जाती सेवाओंसे चित्त कभी कृष्णप्रवण हो नहीं सकता... वह...यदि किसी अन्य तनुजासेवाकर्ता (गोस्वामी-मुखीया-ट्रस्टी) को वेतन-तनुजासेवामुल्य-के रूपमें वित्त देकर करायी जाती है तब वह वित्तजा सेवा हुई जो चित्तको राजसभाव = दर्प-दम्भादिसे युक्त बना देती है, पर कृष्णप्रवण नहीं बना पाती. यदि किसी अन्यसे वेतन-तनुजासेवामुल्य-के रूपमें वित्त ग्रहण करके तनुजासेवा

की जाती है तब पुरोहितोंको जैसे यज्ञ-यागका फल नहीं मिलता है वैसे ही दूसरेके वित्तसे तनुजा सेवा करनेवालेको भी कृष्णप्रवणतारूप फल कभी नहीं मिलता.

...जो अपने स्वजन हो और भक्त हो ऐसोंको ही श्रीठाकुरजीके दर्शन कराने चाहिये.

...११वां अपराध : अवैष्णवके समक्ष अपने घरमें बिराजते श्रीठाकुरजीका प्रदर्शन करना. फल : एक वर्षकी सेवा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित : श्री ठाकुरजीको पञ्चामृत स्नान कराना.

...३६वां अपराध : श्रीठाकुरजी (या श्रीभागवतजी या श्रीयमुनाजी) के नामसे (भेट, सामग्री, पोथीसेवा, या न्योछावर) मांगना. फल : सेवा सर्वथा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित : जितना मांगा या बटोरा हो उससे पांचगुना नैवेद्यका प्रभुको दान (न कि समर्पण) करना.

...आजीविका कमाने या यश पानेके लिये भी भजन (सेवा) करता हो तो उसकी क्या गति होगी?...वह व्यक्ति भी क्लेश ही पाता है ऐसा श्रीमहाप्रभुके वचनका साफ-साफ अर्थ है. न केवल उसे ऐहिक (पारिवारिक-समाजिक-साम्प्रदायिक) क्लेश ही होता है प्रत्युत उसके सारे पारलौकिक अधिकार एवं फल भी नष्ट हो जाते हैं ऐसे निषिद्ध आचरणके कारण...अत्यल्प भी ज्ञान हो वह तो ऐसा कुकृत्य नहीं कर सकता है.

...भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें घरमें सेवा करनेका विधान किया गया होनेसे यह सूचित होता है कि अपने घरमें बिराजते प्रभुकी सेवाको छोड़कर अन्य कहीं दर्शन-सेवा-कीर्तनादि करनेसे भक्ति सिद्ध नहीं होती है.

...भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके बिना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कंठमें क्यों न अटक जाये परन्तु आजीविकार्थ उसका उपयोग नहीं करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके ओर जैसे भी अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये.

...मुख आदिके प्रक्षालनमें प्रयुक्त अपवित्र जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमें जो गढ़ढ़े खोदे जाते हैं उनके जैसे निम्न गानोपजीवी होते हैं...इससे यह आशय प्रकट हुआ कि प्रक्षालनोच्छिष्ट गर्तपूरित जलकी तरह इन गानोपजीविओंका भाव सत्पुरुषोंके लिये ग्राह्य नहीं होता...पुराणकथासे आजीविका चलानेवाले पौराणिक भी ऐसे गायकोंके तुल्य होते हैं...

हे श्रीवल्लभ! आपके कहे हुवे वचनसे विपरीत जो कोई कुछ कहते हैं वे सभी भ्रान्त केवल अन्धतम नरकको पानेवाले सहज आसुरी जीव हैं.

(पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभामें विचारार्थ प्रस्तुत की गई सिद्धान्तवचनावलीके अंश, हस्ताक्षरोकी फोटोकॉपी देखें: सचित्र अमृतवचनावली, संयुक्त प्रकाशन, २००८)

सम्मतिमें हस्ताक्षर करनेवाले गोस्वामी महानुभाव :

गो.श्रीअनिरुद्धलालजी द्वारकेशलालजी (मांडवी-हालोल)
गो.श्रीकिशोरचन्द्रजी पुरुषोत्तमलालजी (जुनागढ़)
गो.श्रीकन्हैयालालजी चन्द्रगोपालजी (विरमगाम-अहमदाबाद)
गो.श्रीकृष्णकान्तजी कृष्णचन्द्रजी (इचलकरंजी)
गो.श्रीकृष्णकुमार श्रीरमणलालजी (कांदीवली-कामवन)
पंचमपीठाधीश्वर नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी (कामवन-वल्लविद्यानगर)
गो.श्रीगोपिकालंकारजी श्रीवल्लभलालजी (राजकोट-माणावदर)
चतुर्थपीठाधीश गो.श्री. देवकीनन्दनाचार्यजी (गोकुल)
गो.श्रीद्रुमिलकुमार मथुरेश्वरजी (वडोदरा)
गो.श्रीद्वारकेशलालजी गोविन्दरायजी (कामवन-सुरत)
गो.श्रीनवनीतलालजी गोविन्दरायजी (कामवन-भावनगर)
गो.श्रीमथुरेशजी चन्द्रगोपालजी (विरमगाम-अहमदाबाद)
गो.श्रीमाधवरायजी मुरलीधरजी (वेरावल)
गो.श्रीरघुनाथलाल श्रीरमणलालजी (कामवन-गोकुल-पार्ला)
गो.श्रीरघुनाथजी रमेशकुमारजी (मुलुंड-नासिक)
गो.श्रीरवीन्द्रकुमारजी दामोदरलालजी (राजकोट-मांडवी)
गो.श्रीरसिकरायजी द्वारकेशलालजी (उपलेटा-पोरबन्दर)
गो.श्रीराजेशकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो.श्रीवल्लभलालजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो.श्रीवल्लभलालजी गिरिधरलालजी (कामवन-विद्यानगर)
गो.श्रीवल्लभलालजी देवकीनन्दनजी (गोकुल-अहमदावाद)
गो.श्रीविजयकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो.श्रीविठ्ठलनाथजी लालमणीजी (कोटा-मुंबई)

गो.श्रीव्रजरायजी रणछोडलालजी (अहमदावाद)
गो.श्रीव्रजेशकुमार श्रीगोविंदलालजी (कडी-अहमदावाद)
गो.श्रीव्रजेशकुमार चन्द्रगोपालजी (कडी-अहमदावाद)
गो.श्रीशरदकुमार (शीलूबावा) श्रीमुरलीधरजी (पोरबंदर)
गो.श्रीमधुसूदनजी श्रीकृष्णचन्द्रजी (चेन्नई)

संयुक्तघोषणापत्र : अमदावाद

आज फेरि वो समय आयो है वासों हु कठिन समय आयो है. वा समय तो अन्यमार्गीय लोग मतनुकुं प्रस्तुत करिके भ्रम उत्पन्न करत हते. परि आज तो अपने सम्प्रदायके ही 'सुज्ञजन' श्रीमहाप्रभुजीकी वाणीको विपरीत अर्थ करि रहे हैं. लोगनकूं पथभ्रष्ट करि रहे हैं. दैवीजीवनके सङ्ग घोर अन्याय करि रहे हैं. तासों ही अभी महाप्रभु श्रीवल्लभाधीशके वंशज पुष्टिमार्गीय युवा आचार्यनूने एक 'संवादस्थापकमण्डल'की स्थापना करीके मुम्बईमें... चार दिवस पर्यन्त एक पुष्टिसिद्धान्त चर्चासभाको आयोजन कियो हतो... सभामें ३५ महानुभाव आचार्य उपस्थित हते २८ गोस्वामी आचार्य महानुभावनूने गो.श्रीश्याम मनोहरजी महाराश्री (किशनगढ-पार्ला)के 'सिद्धान्तवचनावली'के भावानुवादकुं सहमति दीनी हती... पू.पा.गो.श्रीहरिरायजी व्रजभूषणलालजी महाराजश्री जामनगरवारेनूने पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी महाराजश्रीके सङ्ग विनने करे भावानुवादके मुद्दानूपे चर्चा प्रारम्भ कीनी हती... समयके अभावके कारण चर्चा निर्णयपे पहुंच न सकी. परन्तु वर्तमान(में) कितनेक चर्चास्पद, संशयास्पद मुद्दानूकी स्पष्टता या चर्चामें प्राप्त भयी जो वस्तुतः एक बड़ी सिद्धि है. इतनो ही नहीं परन्तु नीचे बताये मुद्दानूके विश्लेषणमें पूज्य श्रीश्याम मनोहरजीके सङ्ग सहमत होयके पूज्य श्रीहरिरायजीने अपने सम्प्रदायकी उत्तम सेवा कीनी है:

१. पुष्टिमार्गीय सेव्यस्वरूप पूर्णपुरुषोत्तम स्वरूपसों ही बिराजे हैं, वे स्वरूप पाछें चाहे गुरुके सेव्य होवें के शिष्य (वैष्णव)के सेव्य होवें दोउ(स्वरूपनू)मेंतें कोउमें हु पुरुषोत्तमपनों न्यूनाधिक होत नाहीं.

२. पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त अनुसार कृष्णसेवा करिवेको स्थान गृह ही होइ सकत है सार्वजनिक (स्थल) नाहीं.

३. पुष्टिमार्गीय भगवत्सेवाकु धनकी प्राप्तिको साधन बनानो नहीं चहिये.

४. देवलक (=भगवत्सेवाकु धनप्राप्तिको साधन अथवा आजीविकाको साधन बनायवेवारे) व्यक्तिकी सेवा निषिद्ध कक्षाकी होयवेसों (वो) सेवा करवे योग्य नाहीं है.

५. श्रीठाकुरजीके तांई काहु प्रकारके दान-भेंट मांगने अथवा स्वीकारने वो शास्त्रद्वारा निषिद्ध है इतनो ही नाहीं परि लाभ-पूजाके हेतुसों अपने लिये द्रव्य अथवा काहु वस्तुको स्वीकारनो वो शास्त्रकी दृष्टिमें ऋणानुबन्धी दोषकों उत्पन्न करिवेवारो होयवेसों बन्धनकारी है.

६. पुष्टिमार्गके सिद्धान्तानुसार श्रीठाकुरजीकुं निवेदन करे पदार्थनुको ही समर्पण होइ सकत है अरु समर्पित पदार्थनुको ही भगवद उच्छिष्टरूपमें प्रसाद लेइ सकत हैं श्रीठाकुरजीके लिये दान अथवा भेंट के रूपमें आयी भयी सामग्रीकुं प्रसादके रूपमें ली नहीं जा सके है क्योंके श्रीठाकुरजीके लिये दान अथवा भेंट के रूपमें प्राप्त भये पदार्थ (द्रव्य)सों आयी सामग्रीकुं प्रसादके रूपमें पाछी लेवेसों 'दत्तापहार'को पाप लागत है.

७. सेवा तो शास्त्रको विषय है तासों सेवाके सम्बन्धमें शास्त्रसों श्रीमहाप्रभुजीके ग्रन्थनुसों ही सर्व निर्णय होइ सकत है अन्य काहु प्रकारसों नाहीं.

(''संयुक्तघोषणापत्र:अमदावाद'', मिति फाल्गुन सुदि.७, श्रीवल्लभाब्द ५१४, दि.११ मार्च १९९२, देखें : पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा संक्षिप्तविवरण १९९३)

हस्ताक्षर:

नि.ली.गो श्रीव्रजरायजी-श्रीनटवरगोपालजी महाराज (अहमदाबाद)

पू.पा.गो.श्रीव्रजेन्द्रकुमारजी महाराज (अहमदाबाद)

च.पी.पू.पा.गो.श्रीदेवकीनन्दनजी (गोकुल)

पू.पा.गो.श्रीव्रजेशकुमारजी महाराज (अहमदाबाद-कडी)

पू.पा.गो.श्रीराजेशकुमारजी महाराज (अहमदाबाद-कडी)

पू.पा.गो.श्रीवल्लभलालजी महाराज (अहमदाबाद-कडी)

पू.पा.गो.श्रीजयदेवलालजी (कामा-अहमदाबाद-वीरमगाम)

पू.पा.गो.श्रीमथुरेशजी (कामा-अहमदाबाद-वीरमगाम)

पू.पा.गो.श्रीकन्हैयालालजी (कामा-अहमदाबाद-वीरमगाम)

पू.पा.गो.श्रीहरिरायजी (कामा-अहमदाबाद-वीरमगाम)